॥ ओ३म् ॥

प्रभु से विनय

हम परमपिता परमात्मा की उपासना करते हुए यज्ञशाला में परणित होते हुए अपने विचारों का यज्ञ करते चले जायें। नाना प्रकार का संकल्प हो, संकल्प के साथ में हमारा एक मानसिक संकल्प हो, प्राण का ही उसमें निदान हो, उसके पश्चात् जब हम उसमें आहुति देते हैं तो वह आहुति द्यौ लोक को प्राप्त होती है। देवतागण उसको प्राप्त करते हैं और देवता जब तृप्त होते हैं तो राष्ट्रवाद को क्या, समाज को पवित्र बनाते चले जाते हैं। परमाणुवाद को ऊँचा बनाते चले जाते हैं। क्योंकि यह जितना जगत है यह सब परमाणुओं की ही रचना है। द्यौ लोक का जो घृत है उसमें कितने सूक्ष्म परमाणु होते हैं, और वह परमाणु जब अग्नि—उद्गाता बन करके और वायु अध्वर्यु बन करके जब उसका साकल्य उसमें प्रदान किया जाता है तो द्यौ लोक में कितनी महान गति होती है, कितना मानव का हृदय स्वच्छ और पवित्र होता है, ममता से रहित होता है, नाना प्रकार की विडम्बनाओं से रहित होता है उतना ही द्यौ लोक को मानव का संकल्प प्राप्त होता चला जाता है।

पूज्यपाद-गुरुदेव

अंक : 539 कुल पृष्ठ संख्या समग्र अंक : 614
वर्ष : 45 44 समग्र वर्ष : 52

अनुक्रम

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
1. प्रभु से विनय	पूज्यपाद-गुरुदेव	3
2. अनुक्रम		4
3. ब्रह्म, आत्मा और प्रकृति	पूज्यपाद-गुरुदेव	5-21
4. वास्तविक शांति का मार्ग	पूज्यपाद-गुरुदेव	22-37
5. ऋषियों के उद्‌गार		38
6. दान, पुस्तकों की सूची व प्राप्ति के स्थान तथा सूचना इत्यादि		39-42

पूज्यपाद गुरुदेव का जन्मोत्सव

परमपिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा से पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज, आदि गुरु ब्रह्मा जी के परम प्रिय शिष्य के 75वें जन्मोत्सव के शुभावसर पर दिनाँक 7 सितम्बर से 9 सितम्बर 2017 तक गुरुदेव की कर्मभूमि एवम् निर्माणीत यज्ञीय स्थली लाक्षागृह बरनावा में सामवेद ब्रह्म पारायण महायज्ञ के आयोजन द्वारा प्रति वर्ष की भाँति बड़े हर्षोल्लास के साथ गाँधी धाम समिति (पञ्जी.) के द्वारा मनाया जा रहा है।

अतः आप सभी से नम्र निवेदन है कि योग निष्ठ गुरुदेव द्वारा पुनः से प्रज्वलित इस यज्ञ ज्योति को निरन्तर ऊर्ध्वा में ले जाने के लिए आप अपने परिवार, सगे-सम्बन्धी एवम् मित्रों सहित भाग लेकर आहुति प्रदान करके पुण्य के भागी बनें।

श्री गाँधी धाम समिति (पञ्जी.)

।। ओ३म् ।।

ब्रह्म, आत्मा और प्रकृति

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हों गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ब्रह्म विचार भी होता रहता है, आत्म चिन्तन भी होता रहता है। इससे पूर्व शब्दों में ब्रह्म की चेतना के सम्बन्ध में विचार-विनिमय होता चला जा रहा था। हमारी जो अनुपम प्रतिभा है वह नाना प्रकार के पठन-पाठन में सुगठित रहती है जैसे हमारे यहाँ वेद मन्त्रों के नाना प्रकार होते हैं, जैसा हमने कल के शब्दों में भी उच्चारण किया था कि जटा पाठ, घन पाठ, माला पाठ, विसर्ग पाठ, उदात्त, अनुदात्त और भी नाना प्रकार होते हैं। हमारे यहाँ एक माला पाठ होता है जैसा इससे पूर्व काल के शब्दों में हमने उच्चारण किया है कि माला पाठ किसे कहते हैं कि धागा और मनके दोनों सुगठित हो करके एक माला प्रतीत होने लगती है, इसी प्रकार यह जो जगत् हमें लोक लोकान्तरों का प्रतीत हो रहा है, यह सब उस ब्रह्म और प्रकृति के व्याप्य और व्यापकता का सम्बन्ध होने के नाते संकलाबद्ध प्रतीत होता चला जा रहा है। उस संकला में जब हम यह विचार-विनिमय करते हैं कि उस ब्रह्म की आनन्दमयी जो अनुपम ज्योति है, चेतना है वह जब प्रकृति के आँगन में ओत-प्रोत हो जाती है तो प्रकृति का स्वभाव स्वतः उत्पन्न होने लगता है। इससे पूर्व मैं ऋषि मुनियों के विचार प्रकट कर रहा था। हम यह उच्चारण करते चले जा रहे थे कि आदित्य मुनि महाराज का क्या सिद्धान्त है और अंङ्गिरा जी क्या उच्चारण करते चले जाते हैं और वायु जी ने क्या कहा है, यही विचार थे।

पूज्य महानन्द जी—"भगवन्! इन विचारों से हमारा परम्परा से कुछ मतभेद रहा है।"

पूज्यपाद-गुरुदेव—"हाँ, उच्चारण करो।"

पूज्य महानन्द जी—"भगवन्! हमारा मतभेद यह है कि जैसा आपने वायु मुनि के वाक्यों में कुछ शब्दार्थ कहा था कि वायु जी इन तीनों को इस प्रकार स्वीकार करते हैं, तो इससे तो भगवन्! यह जो नाना प्रकार के ऋषियों के सिद्धान्त हैं, यह अमिट हो जाते हैं और नास्तिकवाद की तरङ्गें उत्पन्न होने लगती हैं।"

नास्तिक और आस्तिक

पूज्यपाद-गुरुदेव—"हास्य...बेटा! यह कैसे माना जा सकता है कि अभी तक हम यही नहीं विचार पायें हैं कि नास्तिकवाद कहते किसको हैं। **नास्तिक उसको कहते हैं जिसको स्वयँ आत्मविश्वास नहीं होता है,** क्योंकि संसार में जितना भी नास्तिकवाद होता है, वह केवल उसकी आत्मा को अपने ऊपर स्वयँ अधिकार न होने के नाते ही, वह स्वतः ही नास्तिक कहलाये जाते हैं। संसार में केवल प्रभु का चिन्तन करने वाला ही आस्तिक नहीं होता, **प्रभु का चिन्तन जो आत्मिक श्रद्धा से करता है, और आत्मा के स्वरूप को जानता है वह संसार में वास्तविक आस्तिक होता है।** रहा यह वाक्य कि नास्तिकवाद की तरंङ्गें उत्पन्न होने लगती हैं आज हम यही नहीं जान पाते। परम्परा से नास्तिक तो मैं उसे कहा करता हूँ जो वेद की पोथी को जानने वाला है परन्तु वेद के स्वरूप को नहीं जानता, वह वास्तव में नास्तिक होता है। परन्तु रहा यह वाक्य कि प्रभु को नहीं स्वीकार करना, मानो हम प्रभु को अमिट कर देते हैं, तो इससे आज मानव यह स्वीकार नहीं कर सकता कि हम नास्तिक बन गये हैं, अथवा यह नास्तिकता है। हम जब प्रभु के अस्तित्व को अच्छी प्रकार जानने लगते हैं, जब हम त्रेतवाद का समर्थन करने लगते हैं तो इसमें नास्तिकतावाद का कोई शब्द आना ही नहीं चाहिए, और न इसमें हमें नास्तिकवाद ही प्रतीत होता है जब हम त्रैतवाद को या प्रभु को अकर्त्ता स्वीकार करते हैं। **प्रभु**

अकर्त्ता है, क्योंकि उसकी अकर्त्ता में ही कर्त्ता की प्रतीति होने लगती है। मानव का सिद्धान्तों में जो नाना प्रकार का भेदन आ जाता है। आगे चल करके बेटा! बुद्धि की जो पराकाष्ठा है, उसमें जा करके तो एक ही तुलना हो जाती है। रहा यह वाक्य कि हम नास्तिकवाद में परणित हो जायें, तो यह वाक्य सुन्दर नहीं, क्योंकि मुझे यह तुम्हारे शब्द प्रतीत नहीं हो रहे हैं मुझे तो कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि यह वाक्य तुम कहीं से चुनकर लाये हो।"

पूज्य महानन्द जी—"हास्य.....भगवन्! ऐसा तो नहीं है।"

पूज्यपाद-गुरुदेव—'नहीं! मुझे प्रतीत हो रहा है क्योंकि मैं इस वाक्य को कैसे स्वीकार कर सकता हूँ। अच्छा बेटा! उस वाक्य को चलने दो जो चल रहा था। इन वाक्यों में जाने का हमें इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा कि हम इस वाक्य में चले जायें कि यह संसार नास्तिक है, आस्तिक है।

आस्तिक बनने की प्रेरणा

परन्तु हम तो यह जानते हैं कि संसार में प्रत्येक मानव को, प्रत्येक प्राणी को आस्तिक होना चाहिए, क्योंकि आस्तिक होना ही मानव की आत्म-उन्नति है। **यदि आत्मा की उन्नति का कोई मूल कारण है, तो उसका आस्तिकवाद है,** आस्तिकवादी प्राणी संसार में किसी भी काल में निराशा को प्राप्त नहीं होता है। वह सदैव आशावादी होते हैं। आशावादी जो प्राणी हुआ करते हैं वह वास्तव में अपनी आत्मा को उन्नति करके संसार से पार हो जाते हैं। जो संसार हमें माना के मान अपमान प्रतीत हो रहा है, जिसमें मानव को सदैव यह अकृत रहता है कि इसमें नष्ट न हो जायें—मानव इनसे उपराम होकर अपने जीवन को उन्नत बनाता चला जाता है।

महर्षि मंगलेत्व महाराज की अध्यक्षता में ऋषि मुनियों का चिन्तन

बेटा! मैं अपने वाक्यों को प्रारम्भ करने जा रहा था कि महर्षि वायु मुनि महाराज और आदि ऋषियों का जब समाज एकत्रित होने लगा, तो आगे चल करके महषि भृगु ऋषि जी ने महर्षि वायु जी से एक वाक्य कहा कि महाराज! जब आप यह स्वीकार करते हैं

कि इस प्रकृति का स्वयँ स्वभाव उत्पन्न हो जाता है, चेतना के प्रभाव से, चेतना के सूक्ष्म से सम्बन्ध से तो क्या इस आत्मा का भी इसी प्रकार स्वभाव उत्पन्न हो जाता है, अथवा यह भी पृथ्वी का स्वभाव माना गया है। उस समय महर्षि वायु जी ने कहा कि हमारा तो यह विश्वास है और वेद कहता है कि आत्मा ब्रह्मेव्रतं प्रभा वसुकृती रुद्रो व्यापम् गति तक प्रकाणः" वेद का आचार्य कहता है कि यह जो मानव का शरीर है यह भी, जैसे यह ब्रह्माण्ड है और ब्रह्म को सूक्ष्म चेतना होने पर स्वभाव उत्पन्न हो जाता है, इस बाह्य जगत् में, इस सर्वश लोक लोकान्तरों वाले ब्रह्माण्ड में प्रकृति की स्वयँ स्वभाव चेतना से उत्पन्न होता है, एक अणु की चेतना से उत्पन्न होता है, उसी चेतना से यह जो हमारा मानव शरीर है, इसमें भी आत्मा व्याप्य और व्यापक रूप से उसका सन्निधान होने पर, इस शरीर में भी चित्त इत्यादियों का स्वभाव स्वतः उत्पन्न होने लगता है। जैसे ब्रह्म को स्वीकार किया गया है, इसी प्रकार हमारे यहाँ आत्मा को भी स्वीकार किया गया है। महर्षि वायु मुनि जी ने यह वाक्य उच्चारण किया तो ऋषि मुनियों में एक क्रान्ति उत्पन्न हो गई। वहाँ वायु मुनि महाराज के समक्ष महर्षि सन्धुत महाराज, कुरकात्री मुनि के पौत्र कहलाये जाते थे, वह भी उनके समीप आ पहुँचे। आगे आदित्य जी महाराज, महर्षि अङ्गिरा जी इन सभी ऋषियों का समाज एकत्रित हो गया। एकत्रित हो जाने के पश्चात् मंगलेत्व महाराज को सभापति चुना। सभापति होने के नाते वहाँ वाद विवाद की शंकला प्रारम्भ होने लगी। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों का आध्यात्मिक वेत्ताओं का वाद विवाद इस प्रकार नहीं होता, जो मानव मानव को नष्ट करने की चेष्टा उनमें उत्पन्न हो। अपने आत्मा के उत्थान के लिए, आत्मतत्त्व के लिये उनका विचार विनिमय चला करता है।

ऋषि मुनियों के महर्षि वायु मुनि महाराज से प्रश्नोत्तर

मेरे प्यारे ऋषिवर! जब मंगलेत्व ऋषि महाराज से महर्षि भृगु आदि ऋषियों के प्रश्न उत्पन्न होने लगे, तो उस समय वायु मुनि

महाराज को पुनः समय दिया गया और मंगलेत्व ऋषि महाराज ने यह कहा कि आज आप कुछ इनके प्रश्नों का उत्तर दीजिए। ऋषि मुनियों ने कहा कि महाराज! आप हममें सबसे श्रेष्ठ प्रतीत होते हैं, मन ही मन में आपको प्रणाम करते हैं, परन्तु हमारा यह प्रश्न है कि आत्मा को भी आप ब्रह्म की चेतना स्वीकार करते हैं, ऐसे ही आप आत्मा की चेतना को स्वीकार करते हैं, हम यह जानना चाहते हैं कि क्या चेतना भी भिन्न-भिन्न होती हैं, संसार में? हम केवल ब्रह्म की चेतना स्वीकार करते तो क्या आत्मा की चेतना भिन्न होती है? उनके प्रश्न का आदर करते हुए महर्षि वायु मुनि जी ने कहा है कि वास्तव में ब्रह्म की चेतना महान सूक्ष्म है और उससे कुछ स्थूल रूप में आत्मा की चेतना स्वीकार की गई है। रहा यह वाक्य कि तुम ऐसा स्वीकार कर सकते हो कि ब्रह्म ही इस आत्मा के गर्भ में स्वीकार किया जाये, तो मैं इसे कदापि भी स्वीकार नहीं कर सकूँगा।

उस समय ऋषि मुनियों ने पुनः यह कहा कि जब ब्रह्म अति सूक्ष्म है जैसा तुमने अभी इन शब्दों में उच्चारण किया था और इससे पूर्व विचारधाराओं में कि यह जो आत्मा है यह मानो केश के गोल भाग के साठ विभाग किये जायें और साठवाँ जो भाग है उसके 99 भाग किये जायें उस 99 वें भाग को आत्मा के तुल्य स्वीकार किया गया है बुद्धि के आँगन में वह केवल जो 99वां भाग है उसके 99 भाग करो और जो 99वाँ भाग है उसके साठ भाग करो और साठवें भाग को आपने ब्रह्म को आत्मा स्वीकार किया है तो तुम में ब्रह्म का प्रविष्ट क्यों नहीं स्वीकार कर रहे हो?

इसका उत्तर देते हुए महर्षि वायु मुनि महाराज ने वेद के कुछ शब्दों को उच्चारण करते हुए कहा कि "ब्रह्मा व्यापय प्रभे अस्तिः अप्रति रुद्रो मा मान्च प्रति कृतानि रुद्राः अश्वेति रुद्रो भागं मम्वेति अक्सत्म आमांचि आत्मा मध्यम् प्रमेणे अविस्त सुप्रजा।" उन्होंने कहा कि यदि जब हम आत्मा के स्वभाव को भिन्न स्वीकार करते हैं तो ब्रह्म को उसमें प्रविष्ट होने की आवश्यकता हम क्यों स्वीकार करें? इसका हमें उत्तर दीजिये। इसमें भङ्गी ऋषि जी ने कहा कि

उसको इसलिये स्वीकार किया जाये, क्योंकि जगत् में एक ही ब्रह्म है जो महान् सूक्ष्म है, और वह सब जगह ओत-प्रोत है, वह आत्मा और प्रकृति सब में ओत-प्रोत हो रहा है। इसमें महर्षि वायु मुनि जी ने कहा है कि यह वेद का शब्द कहता है "सन निधानम् प्रभे अकृति रुद्रो अणु प्रमाणाः अकृति रुद्रः" उस समय वायु जी ने कहा कि इस वाक्य को मैं इस प्रकार स्वीकार किया करता हूँ कि वास्तव में ब्रह्म को सर्वत्र ओत-प्रोत स्वीकार करने में हमारा कोई मतभेद नहीं है। परन्तु यदि यह स्वीकार किया जाये कि आत्मा में ही ब्रह्म प्रविष्ट होता है, तो यह प्रतीत होता है कि आत्मा के गर्भ में ब्रह्म विराजमान है। वह जो ब्रह्म की चेतना है वह जब प्रकृति का स्वभाव उत्पन्न कर देती है तो क्या इसी प्रकार आत्मा के स्वभाव को उत्पन्न नहीं कर सकेगी?

उस समय महर्षि भङ्गी ने कहा "सौमाम् प्रति बद्धयं नाम प्रणे अस्ति व्यापम ब्रह्मे व्यापको नित्य प्रमाणाः आस्ति सुप्रजाः" कि वही व्याप्य और व्यापक का सूक्ष्म? उत्पन्न होने लगता है जब प्रकृति में चेतना उत्पन्न हो जाती है, प्रकृति का स्वभाव उत्पन्न हो जाता है परन्तु आत्मा का स्वभाव क्या है? आत्मा का जो स्वभाव है वह भी जैसे ब्रह्म में कुछ चेतना है इसी प्रकार चेतनता उसमें स्वीकार की जाती है और जब इसमें चेतना स्वीकार की जाती है, तो हम यह जानना चाहते हैं कि आत्मा की चेतना का स्वभाव क्या है? उस समय वायु जी ने कहा कि आत्मा की चेतना का जो स्वरूप है, वह केवल वाणी का विषय नहीं है, यह सब अनुभव का विषय माना गया है। परन्तु जब वायु मुनि जी ने ऐसा कहा तो भङ्गी जी ने कहा कि जब यह अनुभव का विषय है तो ब्रह्म का विषय भी अनुभव का स्वीकार कर लेना चाहिए। यह कैसे स्वीकार किया जाता है कि प्रकृति की स्वयँ चेतना उत्पन्न हो जाती है, प्रकृति का स्वभाव क्या है? प्रकृति का जो स्वभाव है वह जड़ता है, जड़वत् होने के नाते सूक्ष्म सा सन्निधान होते ही उसका स्वभाव उत्पन्न हो जाता है? उन्होंने कहा कि जब उसको व्याप्य और व्यापक होते

ही उसका स्वभाव क्या है जो उत्पन्न हो जाता है? उन्होंने कहा कि प्रकृति का स्वभाव है रचना, उसकी रचना उत्पन्न होने लगती है जैसे ब्रह्म की चेतना से यह बाहरीय जगत् उत्पन्न हो जाता है, इसका प्रसारण हो जाता है, इसमें व्यापकवाद की उत्पत्ति हो जाती है उसको स्वभाव उत्पन्न हो जाता है, इसी प्रकार आत्मा की जो चेतना है, उसका भास चित्त पर आते ही चित्त अपना व्यापार कार्य प्रारम्भ कर देता है।

उन्होंने कहा कि क्या आत्मा चित्तवत् है? उन्होंने कहा कि आत्मा चित्तवत् भी स्वीकार किया जाता और नहीं भी किया जाता। अब वायु मुनि जी के विचारों में एक महान् क्रान्ति उत्पन्न होने लगी। महर्षि भृङ्गी जी ने जब यह कहा कि क्या तुम आत्मा में चित्त को स्वीकार करते हो? उन्होंने कहा कि वास्तव में आत्मा में व्यापार में चित्त स्वीकार करते हैं, परन्तु किसी काल में आत्मा चित्त से भिन्न स्वीकार की गई है। ऐसा भी स्वीकार किया गया है कि आत्मा में चित्त स्वीकार करने से ही आत्मा इसमें सन जाती है, इसमें लिपायमान हो जाती है किन्तु जहाँ चित्त में लिपायमान होने का प्रश्न उत्पन्न होता है वहाँ यह प्रश्न उत्पन्न हो जाता है कि यह जो आत्मा की चेतना है, आत्मा की जो परिस्थिति है, यह मानो केवल चित्त के ऊपर आभास आता है, उसका एक प्रतिबिम्ब आता है जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब कुम्भाकार में आता है, वहाँ सूर्य उसमें लिपायमान नहीं हो जाता है।

इस प्रकार ऋषि मुनियों में जब यह वाक्य प्रारम्भ होने लगा तो और ऋषि मुनियों में वायु मुनि जी के प्रति और भी क्रान्ति आ गई। महर्षि आदित्य मुनि महाराज ने कहा कि महाराज आपका यह वाक्य तो सुन्दर है परन्तु हम कैसे स्वीकार करें? हमें आत्मा में कैसे इसका विश्वास हो? उन्होंने कहा कि आत्मा में जब विश्वास होगा, जब तुम इसके ऊपर तपस्वी बन जाओगे। जब वायु मुनि जी ने यह घोषणा की कि तपस्वी बनो तो ऋषि मुनियों में एक और क्रान्ति उत्पन्न होने लगी। महर्षि मंगलेत्व ऋषि महाराज ने कहा

कि हम क्या जितने मानव हैं, इनमें तुमसे अधिक कोई तपस्वी ही नहीं हैं? जब यह कटु शब्दों का प्रतिपादन होने लगा तो वायु मुनि महाराज मौन हो गये और मौन होकर के कहा कि कटु शब्दों में आ जाना मेरा कोई विषय नहीं है मैं तो एक वाक्य जानता हूँ कि जो वाक्य तुम्हारे आँगन में या मेरे विचारों में नहीं आयेगा, वह केवल अनुभव का विषय रह जाता है, उसको वाणी उच्चारण नहीं कर सकतीं, क्योंकि ब्रह्म का जो वास्तविक स्वरूप है उसको तुम बुद्धि से जानकारी में नहीं ला सकोगे इसलिये उसको अनुभव किया जाये और अनुभव करने के पश्चात् देखेंगे कि तुम कोई वाक्य भी उच्चारण कर सकोगे। आदित्य मुनि महाराज ने कहा कि वास्तव में वाक्य तो आदरणीय है इस वाक्य को हम आदर पूर्वक स्वीकार करने के लिये तत्पर हैं क्योंकि ब्रह्म का विषय, आत्मा का विषय अन्तिम जो इसकी परम्परा है, वह सब अनुभव का विषय रह जाता है।

मेरे प्यारे ऋषिवर! हमारे यहाँ परम्परागतों से यह स्वीकार किया गया है कि हम ब्रह्म की चेतना में संलग्न हो जायें, और आत्मा की चेतना को स्वीकार करते हुए वास्तव में उन वाक्यों को अनुभव में लाने का प्रयास करें। जब मानव इसका अनुभव कर लेता है, बुद्धि से परे इसका अनुभव हो जाता है तो उस समय उसकी वाणी यहाँ संसार के तत्त्वों में उसकी रुचि उच्चारण करने के लिये तत्पर नहीं होती।

मुनिवरो! वाक्य प्रारम्भ हो रहा था कि जैसे माला में धागे और मनके होते हैं, इसी प्रकार वेद की जो प्रत्येक ऋचा है वह ओ३म् रूपी धागे से पिरोया हुआ है। ओ३म् रूपी धागे से पिरोया हुआ होने के नाते से वह संकलाबद्ध हो रहा है इसी प्रकार वह जो ब्रह्म की चेतना है, इसमें यह सब जितना जगत् है, यह मनके के स्वरूप में परणित हो रहा है। परन्तु जैसे धागा पृथक् है, अकर्त्ता है क्योंकि प्रकृति के स्वभाव में संकलाबद्ध होने के नाते। इसीलिये हम उस परब्रह्म परमात्मा की याचना किया करते हैं कि हे परब्रह्म परमात्मा, हे चैतन्य देव! हम आपकी आराधना कर रहे हैं, आपका

ही स्वरूप हमें प्रकृति में प्रतीत होने लगता है, प्रभो इसलिये हम आपको बारम्बार नमस्कार कर रहे हैं।

पूज्यपाद-गुरुदेव का निजी विचार

बेटा! आज मैं इसे वाद-विवाद का विषय नहीं बनाना चाहता हूँ। मैंने कल के वाक्यों में यह कहा था कि इस सिद्धान्त में हमारा निजी क्या विचार है। देखो, मैं कई काल में परमात्मा को कर्त्ता भी स्वीकार करता चला आया हूँ, परन्तु कई काल में इसको अकर्त्ता भी स्वीकार किया गया है। हमारा जो सार्वभौम सिद्धान्त है, विचारध ाारा है, बुद्धि की जो अन्तिम प्रणाली है वह हम भी वायु मुनि जी के सिद्धान्त को स्वीकार करते चले आये हैं। रहा यह वाक्य कि इस वाक्य को इस प्रकार स्वीकार करने लगूँ कि हमारा "प्रधि ाअस्तवम् ब्रह्मे आभ्यास्ति सुद्रा" यह संसार कैसे यह स्वीकार करता है ब्रह्म को बेटा! इस वाक्य में मुझे अधिक जानकारी नहीं है परन्तु मैंने ऋषि मुनियों के सिद्धान्त तुम्हारे समक्ष नियुक्त किये हैं, जो भी तर्कवाद से बुद्धि संगत होता है उस वाक्य को अन्तिम परम्परा कहते हैं और उसको मानना बुद्धिमानों का कर्तव्य होता है। सबसे ऊँचा जो कर्तव्य है, वह इसको इसी प्रकार स्वीकार किया जाता है।

पूज्य महानन्द जी— गुरु जी! मैं आपसे एक प्रश्न करने वाला था। आधुनिक काल का जो जगत् है वह दो प्रकार का सिद्धान्त स्वीकार करता है। एक यह है कि वह जो ब्रह्म है वह आत्मा में विराजमान है और आत्मा को, प्रकृति को गति देने वाला ब्रह्म है और एक यह स्वीकार करता है कि जैसे कुम्भाकार में जल है और उसी जल को समुद्र में अर्पित कर दिया जाये तो वह भी समुद्र बन जाता है इसी प्रकार एक ही ब्रह्म है और एक ही ब्रह्म में यह सर्वश जगत् ओत-प्रोत है। एक सिद्धान्त यह है जो आधुनिक काल में परणित हो रहा है, जो वर्तमान काल में मैं दृष्टिपात कर रहा हूँ। आज मैंने सूक्ष्म शरीर से मानव की प्रवृत्तियों का भी कुछ निरीक्षण किया है, कुछ इस प्रकार की विचारधारायें हैं। कुछ मानवों में मुझे यह गति प्रतीत हुई कि एक आचार्य दयानन्द जी हुये हैं

जिनको हम ऋषि भी कहते हैं जिन्हें हमारे यहाँ पूर्व काल में शमीक ऋषि के नामों से उनकी आत्मा का उत्थान स्वीकार करते हैं आपने और मैंने पूर्व काल में इस वाक्य को स्वीकार किया था, आधुनिक काल में उसको दयानन्द के नाम से परणित किया जाता है, तो उन्होंने (मानवों ने) आपके काल के शब्दों से कहा है कि ऋषि दयानन्द के सिद्धान्त को समाप्त कर दिया।

पूज्यपाद-गुरुदेव—हास्य....बेटा! वास्तव में यदि जब वह पुनीत पवित्र आत्मा शमीक ऋषि की थी उस समय यह वाक्य होते तो हम यह जानकारी कर लेते। इसमें क्या बात है इसका अभिप्राय यह नहीं कि हमें उसके वाक्य को स्वीकार ही करना है क्योंकि यदि संसार में मानव यह स्वीकार करने लगे कि एक मानव ने जो शब्द उच्चारण किया है वह सार्वभौम सिद्धान्त हो गया है, इसका अभिप्राय यह नहीं है। यह तो मानव की बुद्धि है, मानव का तर्क है, मानव का सिद्धान्त है, इसमें सब स्वतन्त्र हैं, क्योंकि यह जो ज्ञान है, यह भी परमात्मा की एक अनुपम धारा है, यह अनन्त है, जैसे ब्रह्म अनन्त है, और प्रकृति अनन्त है, इसमें जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह भी अनन्त है। इस अनन्ता को तुम सीमितता में लाना चाहते हो तो बेटा! यह वाक्य जो मेरे आँगन में स्वीकार नहीं किये जाते। रहा यह वाक्य कि आधुनिक काल का समाज यह क्या कहता है कि "एको ब्रह्मा" मानो एक ही ब्रह्म के गर्भ में है, तो मैंने पूर्व ही आदित्य और महर्षि अङ्गिरा जी के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता चला आ रहा है, और उनको तर्कवाद पर लाने के लिये मैं सदैव तत्पर रहता हूँ। रहा यह वाक्य कि चाहे कोई दयानन्द आचार्य हो कोई भी मानव हो और इस संसार के ज्ञान-विज्ञान को एक सूक्ष्म सी बुद्धि से अपने आँगन में लाना चाहता है तो बेटा! मैं यह वाक्य स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि परमात्मा का ज्ञान अनन्त है। बेटा! तुमने यह स्वीकार किया होगा कि आत्मा कितनी सूक्ष्म है और उससे अति सूक्ष्म ब्रह्म है। ब्रह्म की जो अति सूक्ष्मता है, चेतना है, ब्रह्म का जो स्वरूप है क्या उसे मानव वाणी से उच्चारण

कर सकता है? यह असम्भव है। रहा यह वाक्य कि वेदों से यह वाक्य आते हैं, क्योंकि वेदों का ज्ञान अनन्त हैं। एक-एक शब्द की अनेक व्याख्यायें होती हैं। एक ही व्याख्या नहीं होती, अनन्त व्याख्या हो सकती हैं और नाना प्रकार की व्याख्यायें होती हैं और नाना प्रकार के ज्ञान-विज्ञान की धारायें भी उत्पन्न हो सकती हैं, परन्तु मैं कोई सन्देह का वाक्य नहीं उच्चारण करना चाहता, जो सर्वेभौम सिद्धान्त है, मैंने उन वाक्यों को तुम्हारे समक्ष प्रकट किया है। तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देते हुये कहा है। मैं तो सदैव ही ब्रह्म की महिमा को गाता रहा हूँ और उसकी महिमा का गुणगान गाना ही चाहिए, प्रत्येक प्राणी को। अब रहा यह वाक्य कि आधुनिक काल में कोई सम्प्रदाय या कोई भी अस्वस्त स्वीकार नहीं करता है।

पूज्य महानन्द जी—'भगवन्! आप ऐसा उच्चारण नहीं कर सकते क्योंकि ऋषि दयानन्द को हम सम्प्रदाय स्वीकार नहीं करते।"

'हाँ हाँ बेटा! तुम्हारा यह वाक्य सत्य है कि तुम सम्प्रदाय स्वीकार नहीं करते हो, परन्तु सम्प्रदायवाद वहाँ आ जाता है, जब एक ही ऋषि के वाक्यों को सार्वभौम सिद्धान्त स्वीकार कर लेते हैं। उसमें रूढ़ि आ जाती है और रूढ़ि आ जाने का नाम ही हमारे यहाँ सम्प्रदाय कहलाता है। इसमें ऐसा कोई वाक्य नहीं कि तुम्हें इस पर क्रोध आ जाये। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम दयानन्द के सिद्धान्त को स्वीकार करते हो।

पूज्य महानन्द जी—हास्य.....भगवन्! ऐसा तो नहीं है क्योंकि ऋषि मुनियों के तो सभी को विचार स्वीकार कर लेने चाहिए।"

पूज्यपाद-गुरुदेव—"हाँ, हाँ हमारा इसमें कोई पृथक विचार तो नहीं है हम इन वाक्यों को स्वीकार करते हैं। प्रश्न यह है कि जो व्यक्ति होते हैं उनकी प्रशन्सा करनी ही चाहिए। परन्तु रहा यह वाक्य कि हमारे विचारों में परिवर्तन लाना चाहता है तो बेटा! जो तपे हुए विचार होते हैं, उनमें परिवर्तन किसी भी काल में नहीं आया करता है, क्योंकि हमारे विचार परम्परा से तपे हुये हैं। अब तुम इन संसार के वाक्यों को चुनकर हमारे समीप लाओ, तो यह

वाक्य स्वीकार नहीं किया जाता क्योंकि जहाँ परमात्मा की दया को स्वीकार करते हैं बेटा! अन्तिम प्रणाली जो बुद्धि की होती है, उस पर जाना चाहिए। यह वाक्य स्वीकार कर सकते हैं कि परमात्मा न्यायकारी भी है, दयालु भी है, किन्तु जब उसको तर्कवाद पर लाते हैं, बुद्धिवाद पर लाते हैं, प्रज्ञावादी बुद्धि के आँगन में लाते हैं तो उस समय हमें यह सिद्धान्त प्रतीत होता है। **ज्ञानमार्ग में और भक्तिमार्ग में बड़ी भिन्नता होती है,** क्योंकि जो भक्तजन होते हैं वह सर्वश परमात्मा को कण-कण में स्वीकार करते हुये, उसकी याचना करते हुये, अपने को इस संसार से पार ले जाते हैं। परन्तु उन मानवों का संसार में गिरने का भय रहता है। भय की प्रतीती इसलिये होती है क्योंकि उनमें विवेक तो होता है, कण-कण में होने के नाते, परन्तु बुद्धिवादी का जो ज्ञान है, उस ज्ञान का जो विवेक है, वह उनके समीप न होने के कारण, यहाँ गिरने का सन्देह रहता है। मैं इस वाक्य को अधिक विडम्बना में नहीं ले जाना चाहता हूँ। रहा यह वाक्य कि यह मानव क्या स्वीकार करता है बेटा! यह वाक्य बहुत गम्भीर है। यह कोई शास्त्रार्थ का विषय नहीं रह जाता है! यह तो केवल अपने विचारों का और अनुभव का विषय है, तपस्या का विषय है क्योंकि जो प्राणी संसार में तपते नहीं हैं, उन प्राणियों को एक-एक वाक्य का भय रहता है और भय इसलिये रहता है कि वह यह जानते रहते हैं कि कहीं तुम्हारा वाक्य नष्ट न हो जाये कहीं तुम्हारा वाक्य मिट न जाये, तो यह मानव के मन में प्रवृति रहती है। प्रत्येक मानव यह चाहता है जो भी संसार में आता है कि जिस सिद्धान्त को वह स्वीकार कर लेता है वह अमिट रहना चाहिए। बेटा! यहाँ यह वाक्य तो है नहीं। तुमने इसका प्रश्न किया है तो मैंने उसका सुन्दर रूप से उत्तर दे दिया है। तुम परम्परा से जानते हो कि मैंने कितने समय के पश्चात् इन वाक्यों को उच्चारण किया है। यह भी तुम्हारे प्रश्नों के अनुसार हम वाद विवाद की वेदी पर न जायें, परन्तु इसको विचार की वेदी बनाये, विचार करें और तर्कवाद पर ले जायें और इस तर्कवाद से भी सिद्ध

न हो तो तपस्वी बनें, मौन हो जायें, उस ब्रह्म की चेतना में, आत्मा की चेतना में अपने को अनुभव करें, आत्मा में विश्वासधारा को उत्पन्न करें तो बेटा! यह सब वाक्य सिद्ध हो सकते हैं। इसमें कोई विवाद नहीं है। रहा यह वाक्य कि आधुनिक काल का मानव एक ही ब्रह्म को स्वीकार करता है। वास्तव में मानव को ऐसा प्रतीत होने लगता है कि एक ही ब्रह्म है, क्योंकि जिस समय यह आत्मा ब्रह्म के स्वरूप को अपने में एकत्रित कर लेती है और ब्रह्म के स्वरूप को यह जान लेती है केवल अगम्मता से और उस अनुभव में जो वाणी से उच्चारण नहीं किया जाता, उस योगी को ऐसा प्रतीत ही होने लगता है कि संसार में एक ही ब्रह्म की चेतना है और यह जो जगत है यह परिवर्तन होने वाला है और ब्रह्म की एक चेतना है जो संसार में चेतनित मानी गई है। तो बेटा! यह वाक्य उस काल में होता है, जब मानव का बुद्धिवाद समाप्त हो जाता है। मैंने तो तुम्हारे समक्ष बुद्धिवादियों की चर्चा प्रकट की हैं और वह बुद्धिवादियों के वाक्य भी तर्क संगत हैं, इसलिये इस वाक्य को स्वीकार करने में किसी प्रकार का दोषारोपण नहीं होना चाहिए। यदि इस वाक्य को मैं और गम्भीरता में ले जाऊँ तो यह भी मुझे शोभा नहीं देता।

परन्तु मैंने ब्रह्म के, आत्मा के, और ब्रह्म और प्रकृति और आत्मा के, कुछ रूप को वर्णन किया है। अब तुम भी बेटा! इस सिद्धान्त को परम्परा से स्वीकार करते चले आये हो। इसीलिये मैं कहा करता हूँ कि तुम इस वाक्य को कहीं से लाये हो? क्योंकि "मैं" का शब्द हमें शोभा नहीं देता कि हम "मैं" का शब्द उच्चारण करें, क्योंकि "मैं" में ही तो प्रकृतिवाद होता है। जितना भी यह मानव है यह "मैं" में ही प्रकृतिवादी होता है। जैसे ओ३म् का उच्चारण होता है "अ" "उ" और "म", मानो ओ३म् जो शब्द है यह सार्वभौम शब्द है। यह ब्रह्म का वाची है और "उ" आत्मा का वाची है और यह जो "म" है यह प्रकृति का वाची शब्द है। क्योंकि प्रकृतिवादी ही "मैं" का उच्चारण किया करते हैं। यह मेरा आश्रम

है, यह मेरा शरीर है, यह मेरा आत्मा है यह मेरा परिवार है, यह मेरा जगत है, यह मेरा देश है मानो इस प्रकार जो "मैं" की प्रवृत्ति है यह सब प्रवृत्ति प्रकृतिवाद में आती है। तो बेटा! मैं यह उच्चारण करना चाहता हूँ, तुम मुझे 'मैं' का शब्द हम उच्चारण नहीं करना चाहते। जितना भी 'मैं' वाद वह सब प्रकृतिवाद है। और जितना 'ओं' वाद है मानो विचारवाद है, 'हम' वाद है, यह सब ब्रह्मवाद माना गया है। हम यह स्वीकार करते हैं कि 'मैं' का संस्कार चित्त में यदि अंकुरित हो गया, तो इसका वृक्ष होगा तो बेटा! प्रकृतिवाद में पुनः से आना होगा। तो इसीलिये हमारा जो यह शब्द है इस वाक्य को तुम 'मैं' में न लाना, क्योंकि जब अधिक कुतर्क होने लगता है, तो मानव को 'मैं' में आना स्वाभाविक हो जाता है, इसीलिये कुतर्क नहीं होना चाहिए केवल तर्कवाद होना चाहिए।

रहा यह वाक्य कि हम यह स्वीकार करते रहते हैं कि जैसे तुमने दयानन्द की आत्मा का प्रश्न किया, जब वह आत्मा शमीक ऋषि के रूप में थी तो बेटा! वह इन्हीं वाक्यों का समर्थन करती थी। उन्हीं वाक्यों को ले करके उन्होंनें त्रैतवाद को स्वीकार किया है। यदि उनके पुरातन के संस्कार नहीं होते शमीक ऋषि वाले, माँ का जो प्रीति ऋषिवर का वाक्य था अटूटी जी, यदि वह माता उसे सुन्दर नहीं बनाती, तो यहाँ संसार में बेटा! जैसा हमें प्रतीत हुआ है वायु मण्डल से, परमाणुवाद से, देखो उस भयँकर काल में आ करके उस महान विभूति ने त्रैतवाद की घोषणा की, और उनका वह शब्द अकाट्य रहा है। इसीलिये उनका आदर करना चाहिए। उस पवित्र ऋषि आत्मा का आदर करना हमारा स्वभाव है क्योंकि आदर करने में हमारा कोई अग्रित नहीं होता, हम अकटित नहीं होते। अन्यथा जहाँ एकवाद हो वहाँ त्रैतवाद की कोई महत्वता नहीं रह जाती है, वहाँ त्रैतवाद नहीं रह जाता है। इसलिये त्रैतवाद का प्रसार अधिक हुआ, क्योंकि वह एकवाद में अधूरे थे। अधूरे इसलिये थे क्योंकि एकवाद वह प्राणी उच्चारण कर सकता है, जो मानव ब्रह्म के स्वरूप में अपनी आत्मा को परणित कर देता है और वह

अनुभव का विषय, मानो वह एकवाद की घोषणा वह किसी भी काल में नहीं कर सकता बेटा! इसलिये हमारा जो यह वाक्य है वह इसलिये है क्योंकि वास्तव में संसार के प्राणियों में ज्ञान की प्रतिभा होनी चाहिए। आज हम इन वाक्यों को लेकर अधिक टिप्पणी नहीं करना चाहते क्योंकि वाक्य का समय समाप्त ही होने जा रहा है।

आज के वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हमारा जो विचार का विषय है, उसको विचारमय बनाना चाहिए। जो विवाद का विषय है, विवाद किन वाक्यों का करोगे? मानो जो मानव संसार में दुराचारता में रहता है, जो आत्मविश्वासी नहीं होता बेटा! उसका तुम सदैव संसार में विरोध करते रहो, उसके प्रति अपना वाद प्रकट करते रहो। और जो मानव चिन्तनवादी है, ब्रह्म का चिन्तन करता है, आत्मा का चिन्तन करता है, प्रकृति का चिन्तन करता है, सिद्धान्त में ऊँचा चला जाता है, उसका सदैव आदर करना चाहिए। और संसार में नास्तिक प्राणी वही होते हैं जो वेद के पठन-पाठन करने वाले होते हैं। जो वेद को यह कहता है कि मैं वेद को स्वीकार नहीं करता और (परन्तु) वह चरित्र को स्वीकार करता है, वह नास्तिक नहीं। एक मानव वेद का पठन-पाठन करने वाला, अक्षरों का, परन्तु दुराचार में है, तो बेटा! जो वेद को स्वीकार नहीं करता, वह उस वेद-पाठी से कहीं सुन्दर कहलाया जाता है। इसीलिए वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कहता है कि वेद नाम प्रकाश का है प्रकाश में मानव को परणित हो जाना चाहिए मानव को अन्धकार में नहीं रहना चाहिए। इस प्रकृति के आवेशों में रहना है, परन्तु इनके इतने आवेशों में नहीं रहना चाहिए कि उसकी आत्मा का जो विश्वास है, आत्मा में जो तन्मय हो जाना है, उससे वह दूर हो जाये।

महापुरूषों का जीवन

इसीलिये महापुरुषों का परम्परा से यह कर्त्तव्य चला आया है कि जो मानव दुराचार में परणित होते हैं उससे शान्त रह करके,

उसका मन ही मन में विचार करो, मानो मन ही मन में उसके प्रति घृणा उत्पन्न हो जानी चाहिए। वास्तव में ऋषि-मुनियों ने तो यहाँ तक कहा है कि घृणा से भी संस्कारों का जन्म होता है, इसलिये घृणा भी मत करो। परन्तु यदि घृणा करनी है, तो आत्मा से नहीं, वह शब्दों से करो, क्योंकि शब्दों की जो घृणा है, वह संस्कारों का जन्म नहीं देती और जो मन का चिन्तन घृणा का है, वह मानव को जन्म जन्मान्तरों में ले जाता है। इसीलिये हमारे यहाँ मन से भी घृणा नहीं करनी चाहिए। केवल शब्दों से घृणा करनी चाहिए। हमारे यहाँ ऋषि-मुनि स्पष्ट उच्चारण किया करते थे। मुझे स्मरण आता रहता है जब माता गार्गी राजा जनक की सभा में पहुँची। महान् सभा थी, वह नग्न रहती थी, उस समय राजा जनक ने कहा हे गार्गी! तुम मेरी सभा में नग्न आ रही हो, तुम्हें लज्जा नहीं आती, उस समय सात्विक शब्दों में क्या कहा था गार्गी ने कि हे राजा जनक! क्या तू ब्रह्म ज्ञान में परणित होना चाहता है? जब तुम एक कन्या को नग्न नहीं दृष्टिपात कर सकते, तो तुम ब्रह्म ज्ञान को क्या प्राप्त कर सकोगे। बेटा! जब इन शब्दों का राजा जनक के अन्तःकरण में प्रहार हुआ, तो राजा जनक उनके चरणों में ओत-प्रोत हो गये।

वाक्यों के उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है? कि मानव को शब्दों से ही घृणा करनी चाहिए, यदि घृणा करनी है तो! राजा जनक की सभा में गार्गी ने वह वाक्य प्रकट किये जिन्हें कोई मानव श्रवण भी नहीं कर सकता था। परन्तु राजा जनक सात्विक था और मन से घृणा नहीं थी। जो मानव मन से घृणा करता है, उसका संसार में कहीं आदर नहीं होता है। जब उसका आत्मा में ही आदर नहीं होता है। मानव के शरीर में ही उसके विचारों का आदर नहीं होता, तो यह बाह्य जगत भी उसका आदर नहीं किया करता है।

हमें विचार विनिमय करना है, हम विचार की वेदी पर आये हैं, हमें सब वाक्यों को विचार विनिमय करके चलना है क्योंकि

वास्तव में मानव विचारों का क्षेत्र है। आज का हमारा यह वाक्य समाप्त होने जा रहा है।

आज के हमारे वाक्यों का अभिप्राय है कि हम ब्रह्म की चेतना को स्वीकार करते हुए, उस ब्रह्म में परणित होते चले जायें, उस ब्रह्म में लीन होते चले जायें जो सर्वत्र ओत-प्रोत है, प्रकृति उसी के सन्निधान से अपना कार्य कर रही है, परमात्मा अकर्न्ता रहता है। उसी में हमारा परणित हो जाना, उसी में समाहित हो जाना, वह मुक्ति का एक प्रबल साधन, उन्नत प्रदीप, कहा गया है। जैसे हमनें कपिलदेव शब्दार्थों में कुछ वाक्य प्रकट किये थे। महर्षि कपिल मुनि महाराज ने बहुत ही सुन्दर शब्दों में प्राण और मन की महत्त्वता स्वीकार की। परन्तु इन दोनों के मध्य में, आत्मा की चेतना को भी स्वीकार किया था। यदि कोई आत्मा की चेतना को स्वीकार नहीं करेगा और इसको गुण और गुणी स्वीकार कर लोगे तो इसमें नाना प्रकार के दोषारोपण आ सकते हैं। इसीलिये इस वाक्य को स्वीकार करना हमारा सभी का कर्तव्य है और परमात्मा की याचना करते हुये हमें इस संसार से जो मान अपमान वाला संसार है इससे हमें पार होना है, इसके साथ हमारा वाक्य समाप्त हो गया है। अब वेदों का पठन-पाठन होगा, इसके पश्चात् यह वाक्य समाप्त होता गया।

पूज्य महानन्द जी—धन्य हो भगवन्!

"भगवन्! मैं तो कल भी प्रश्न करने वाला था।"

पूज्यपाद-गुरुदेव—"हास्य"....बेटा! समय आयेगा प्रश्न करते रहना, इसमें क्या वाक्य है।

पूज्य महानन्द जी—"अच्छा भगवन्!"

पूज्यपाद-गुरुदेव—अब वेद का पाठ होगा।

दिनाँक : 13 अप्रैल, 1969
समय : प्रातः 5 बजे
स्थान : योग निकेतन, ऋषिकेश

।। ओ३म् ।।

वास्तविक शान्ति का मार्ग

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ नित्य प्रति ज्ञान और विज्ञान का विवेचन होता रहता है। प्रायः मानव के मन में एक जिज्ञासा रहती है कि हम ज्ञानी और वैज्ञानिक बने। विज्ञान में भी दोनों प्रकार के विज्ञान की जिज्ञासा रहती है। हम आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता भी बने और भौतिक विज्ञानवेत्ता भी बनें और उस की उत्कट इच्छा यह होती है कि मैं सुख और आनन्द को प्राप्त होता चला जाऊँ। प्रायः मानव को ज्ञान और विज्ञान को जानने की उत्कट इच्छा इसलिए होती है कि आनन्द को प्राप्त करने के लिए।

मेरे प्यारे ऋषिवरो! हमने कल के वाक्य में भी कहा था कि हमारा जो वेद का ज्ञान है वह चतुष्पाद में वर्णन किया है। वास्तव में जब अनुसन्धान अथवा विचार विनिमय किया जाता है तो उसमें ऐसा ही प्रतीत होता है कि परमात्मा का ज्ञान अथवा उसका विज्ञान महान् है क्योंकि उसके ज्ञान में वृद्धपन नहीं होता और न न्यूनता होती है। वह एक रस रहने वाला है जिस प्रकार परमपिता परमात्मा कण-कण में व्याप्त है उसी प्रकार उसका ज्ञान भी कण-कण में व्याप्त रहता है। ज्ञान विज्ञान के सहित रहता है। तो हमें उसी प्रभु को जान लेना चाहिए जिसमें ज्ञान और विज्ञान की महानता समाहित होती है। जब हम अपने प्रभु को जान लेते हैं तो यह ज्ञान और विज्ञान भी हमारे नीचे दब जाते हैं। हम उस परमदेव आनन्द को प्राप्त हो जाते हैं। वह परम आनन्द जब मानव को प्राप्त हो जाता है तो मानव को

एक महान् प्रतिभा जागृत हो जाती है। वही प्रतिभा मानव के जीवन को उज्ज्वल क्या वह परमानन्द को प्राप्त करा देती है।

आओ मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हम अपने उस प्यारे प्रभु का गुण गान गाते चले जायें। वह प्रभु कितना अलौकिक है। उसकी महानता का वर्णन नहीं किया जाता। उसके उच्चारण करने में अन्त में वाणी असमर्थ हो जाती है। आज हम उस मधुरता को प्राप्त करते चले जायें।

मानव की रचना

बेटा! हमारी जो रचना है वह कहाँ होती है, कितनी सुन्दर रचयिता है। माता के गर्भस्थल में वह जीवात्मा विराजमान हो गया है परमाणुओं को एकत्रित करते हुए मानो वही रचयिता उन परमाणुओं से आत्मा के शरीर का निर्माण कर देता है। बेटा! वह कितना सुन्दर है। मेरी प्यारी भोली माता के गर्भस्थल में रचना हो रही है परन्तु माता से दूर है। कितना दूर कितना निकट है? निकट से निकट है और दूर से दूर है। जब दूरी का प्रश्न आता है तो उसी का नाम अन्तर्द्वन्द माना गया है।

आओ मेरे प्यारे! प्रभु गुण गान गाने का आज हमें कुछ सौभाग्य प्राप्त हुआ है। माता के गर्भस्थल में जब जरायुज आता है वह पनपता रहता है परन्तु दिन-दिन नाड़ियों के द्वारा पनपता रहता है, इसके ऊपर मानव को विचार विनिमय कर लेना चाहिए। जब माता की रसना के निचले विभाग में एक स्वांग नामक नाड़ी होती है और स्वांग नाम की नाड़ी के निचले भाग में किरकेतु नाम की नाड़ी होती है और किरकेतु नाम की नाड़ी के मध्य में आगे चल करके पंचम् नाम की नाड़ी होती है। इन तीनों नाड़ियों का समूह हो करके और रसना के द्वार से रस लेकर के माता की लोरियों में वह रस परिपक्व होता रहता है। जब वह रस पकता है तो माता की लोरियों से पंचम् नाम की नाड़ी चलती है जिसको साघात नाम की नाड़ी कहते हैं। साघात नाम की नाड़ी का सम्बन्ध बालक की नाभि के द्वारा होता। तो नाभि के द्वारा बालक माता के जरायुज में, गर्भस्थल में पनपता

रहता है, अपनी आयु को प्राप्त करता रहता है अर्थात् उस आनन्ददायक पदार्थ को प्राप्त करता रहता है। तो वह कितना सुन्दर रचयिता है। एक ही गर्भस्थल में शरीर बनते हैं, मानव का भिन्न है माता का शरीर भिन्न है। उन दोनों की रचना में भी नाना प्रकार का भेदन है। आज इस रचना पर मैं अधिक बल देने नहीं जा रहा हूँ। केवल वाक्यों का अभिप्राय यह है कि वहाँ कितना कष्ट होता है यह जीवात्मा जानता है क्योंकि जब माता के गर्भस्थल में हमारे ऋषि मुनियों ने ऐसा कहा है कि वह जो माता पिता का गर्भाशय है उससे मुक्त होने के लिए मानव ज्ञान और विज्ञान के लिए उत्सुक रहता है। उसी के लिए प्रयत्नशील रहता है कि मैं ज्ञान और विज्ञान को जानने का प्रयत्न करूँ और उस आनन्द को प्राप्त करूँ जिससे मुझे अन्धकार में जाने का अवसर न प्राप्त हो।

आनन्द

मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम उसी अन्तर्द्वन्द से दूर होने के लिए, ज्ञान और विज्ञान में पहुँचना चाहते हैं। वेद का आश्रय लेना चाहते हैं, कहीं ब्रह्मज्ञानी गुरु का आश्रय लेना चाहते हैं। परन्तु तात्पर्य क्या कि मानव को वास्तविक शान्ति के लिए और परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को जानने के लिए मानव सदैव प्रयत्नशील रहता है। एक ब्राह्मण है, नाना प्रकार की पोथियों को एकत्रित करता है। उनका अध्ययन करता है, नवीन जीवन को प्राप्त करता है। अपने जीवन को उसके अनुसार बना लेता है। किसलिए बनाता है? इसलिए बनाता है कि मुझे यह जो आवागमन का चक्कर है इससे मैं मुक्त हो जाऊँ। केवल अभिप्राय एक ही रहता है। इसलिए मेरे प्यारे! ऋषियों ने कहा है कि आज हम आनन्द के लिए रमण करने जा रहे हैं।

एक राष्ट्रवेत्ता है, वह राजा बनता है; नाना प्रकार के ऐश्वर्यों के लिए यदि उससे प्रश्न किया जाता है कि क्या तुम ऐश्वर्यवादी बन गये हो? तो उस समय उसके मुखारबिन्द से भी, यही उत्पन्न होता है, ज्ञान और विज्ञान की दृष्टि से, कि मुझे कदापि भी आनन्द प्राप्त नहीं हो रहा है मैं तो नाना प्रकार के भोग विलासों में लग गया हूँ

और मुझे वास्तविक शान्ति प्राप्त नहीं हो रही है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! राजा बनता इसलिए है कि मैं आनन्द को प्राप्त होऊँगा, परन्तु नाना प्रकार का वैभव मेरे समीप रहेगा। परन्तु उससे भी मानव को शन्ति प्राप्त नहीं होती। तो शान्ति कहाँ प्राप्त होती है? मैं उन्हीं वाक्यों को उच्चारण करने के लिए तत्पर रहता हूँ कि प्रभु का ज्ञान और विज्ञान को जानने के लिए जब मानव तत्पर होता है और उसको तत्परता से जान लेता है और उसके निकट चला जाता है तो वहाँ मानव को वास्तविक शान्ति उत्पन्न होने लगती है।

भगवान् कृष्ण

बेटा! मैं कल के वाक्यों में चला जाऊँ जहाँ मैंने अपना कल का वाक्य समाप्त किया था। कल जो हमारा विवरण चल रहा था कि मन-कला, चक्षु-कला, श्रोत-कला और घ्राण-कला ब्रह्मा के चतुष्पादों का वर्णन किया जा रहा थ। जैसा मुनिवरो। षोड़श कलाओं के जानने वाले भगवान् कृष्ण ने अपने जीवन में किसी प्रकार का पाप कर्म नहीं किया, वह इतने महान् थे। क्यों नहीं किया? यह प्रायः होता है कि जब मानव संसार में आता है तो पाप भी करता है और पुण्य भी करता है। क्योंकि यह शरीर ही उसे पाप-पुण्य कर्म करने के लिए प्राप्त होता है। भगवान् कृष्ण इतने महान् थे, अपने कार्यों में इतने दक्ष थे ज्ञान और विज्ञान में पारङ्गत थे कि वह किसी कार्य को करने के पश्चात् उस पर पश्चात्ताप् नहीं होता था। नम्रता की उनमें प्रतिभा थी। बेटा! तुम्हें स्मरण होगा जब इन्द्रप्रस्थ में यज्ञ हुआ था।

जिस समय यज्ञ का कार्यक्रम बनने लगा कि कौन-कौन मनुष्य क्या क्या कार्य करेगा तो युधिष्ठिर जी से कहा कि महाराज आप तो यज्ञ दृष्टिपात करते रहो, अर्जुन से कहा कि तुम सेवा करो, भीम से कहा कि तुम अस्त्र-शस्त्रों को नियुक्त करो और शकुनी से कहा कि तुम पशुओं के भोजन के प्रति हो इसी प्रकार द्रव्य का स्वामी महाराजा दुर्योधन को बनाया। जब सब चुन लिये, महाराजा युधिष्ठर कृष्ण से बोले कि महाराज आप क्या करेंगे? वह बोले कि मैं वह कार्य करूँगा, जो मैं सदा परम्परा से करता चला आया हूँ, उसी कार्य को मैं कर

पाऊँगा। उन्होंने कहा कि महाराज क्या करोगे? उन्होंने कहा कि यज्ञ में जो अतिथि आयेंगे, मैं उनके चरणों को जल से स्पर्श करके आचमन करूँगा। अभिप्राय क्या है उच्चारण करने का? कि मानव जितना भी गम्भीरता में विवेक से चला जाता है उतनी ही उज्ज्वल उसकी प्रतिभा होती चली जाती है।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं भगवान् कृष्ण को चर्चा करता चला जा रहा था। वह कितने बड़े विज्ञान में रमण करते थे। कितना विज्ञान उनके समीप था? वह जानते थे कि पृथ्वी में क्या है, अन्तरिक्ष के परमाणु क्या कह रहे हैं। जो मानव विज्ञान के आश्रित हो करके वायु मण्डल की तङ्गों को जानने लगता है वही तो संसार में विज्ञानवेत्ता कहलाया जाता है।

आज मैं इस वाक्य को अधिक दूर नहीं ले जाना चाहता। वाक्य यह आरम्भ करने जा रहे थे कि हमारा कल का वाक्य क्या कहता चला जा रहा था। कल का वाक्य कहता चला जा रहा था कि हम मन- कला को जानने का प्रयास करें। मन-कला, चक्षु-कला, श्रोत-कला और घ्राण-कला जिसे प्राण-कला भी कहते हैं, जानने का प्रयास करें।

महर्षि कपिल मुनि महाराज का ज्ञान और प्रयत्न पर मन्थन

मेरे प्यारे! ऋषिवर! मुझे स्मरण है एक समय महर्षि कपिल मुनि महाराज शान्त मुद्रा में विराजमान थे और लेखनीबद्ध करने लगे? तो उस समय यह विचार विनिमय होने लगा कि मैं लेखनीबद्ध करने तो जा रहा हूँ, परन्तु लेखनीबद्ध में क्या करूँ? लेखनी के लिए मेरे द्वारा है क्या? तो विचार विनिमय हुआ कि वास्तव मैं मुझे ज्ञान और प्रयत्न दोनों के ऊपर टिप्पणी करनी चाहिए, जिसका विभाजन होता है, और जो विभाजन करता है। अब तक जो मैंने मन्थन किया है मुझे परमात्मा की सृष्टि में दो ही वस्तु प्रतीत होती है एक विभाजन जो करता है और एक जिसका विभाजन होता है। इसके पश्चात् महर्षि कपिल जी ने लेखनीबद्ध करते हुए कहा कि दो ही वस्तु हैं : **मन और प्राण।** दोनों के ऊपर विचार विनिमय होने लगा कि मुझे

तो ऐसा ही प्रतीत होता है कि मानव का विकास कैसे होता है। वास्तव में तो उसे मृत्युवाद कहना चाहिए। परन्तु मानव उसे विकासवाद कहता है। कपिल जी कहते हैं कि मानव का विकास कैसे हुआ? उन्होंने कहा कि संसार में जब यह जीवात्मा आता है, मानो जब यह शरीर प्राप्त होता है, तो शरीर प्राप्त होते ही इस शरीर में एक क्रिया है, मानो एक बिन्दु है, उस बिन्दु के दो विभाग हो जाते हैं एक को हम ज्ञान कहते हैं और द्वितीय को प्रयत्न कहते हैं; ज्ञान और प्रयत्न दोनों उत्पन्न हो गये। अब जिसको हम प्रयत्न कहते हैं इसका माध्यम तो प्राण बन गया और जिसको ज्ञान कहते हैं इसका माध्यम मनीराम बन गये। अब दोनों की परिक्रियायें शरीर में सुचारु रूप से होने लगीं। क्योंकि प्रायः ऐसा होता है कि जहाँ भी ज्ञान होता है वहाँ कामना उत्पन्न होती रहती है। मनीराम के द्वारा कामना की उत्पत्ति होने लगी। अब जब कामना ओत-प्रोत हो गयी, तो अब उसका पूर्ण होने का कोई न कोई साधन होना चाहिए। जब ज्ञान के द्वारा कामना उत्पन्न हो गई तो यह जो प्रयत्न है, जिसको प्राण कहते हैं, इसकी धाराएं प्रारम्भ होने लगीं। **सबसे प्रथम प्राण की इस प्रकार की पाँच धारायें बनीं** - प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान। जब पाँच प्रकार की धारायें बन गईं तो मनीराम का कर्त्तव्य ही था जहाँ ज्ञान होता है वहाँ कामना उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। तो कामना उत्पन्न होने लगी। अब जब कामना आ गई तो पूर्ण कहाँ हो? **अब इन्हीं पाँचों प्राणों के पाँच उपप्राण बन गये** - नाग, देवदत्त, धनञ्जय, कूर्म और ककल। यह पाँच उपप्राण बन गये। अब इनको कार्य अर्पित कर दिया।

प्राण के कार्य कि नाभि केन्द्र से चलो, नाभि से चल कर घ्राण के द्वारा नाना प्रकार के परमाणु लाओ और यहाँ से दुर्गन्ध भरे परमाणुओं को ले जाओ और वास्तविक सुन्दर परमाणु ले आओ। यह प्राण को कार्य दिया? अपान को कहा कि तुम्हारा सम्बन्ध पृथ्वी से है मानो तुम देखो जो भी अवृहीण होता है, इसमें मृत्यु समाहित रहती है, तरंगत समाहित रचना है। मानो इसका पृथ्वी से सम्बन्ध हो गया

कि पृथ्वी से गन्ध लाओ और दुर्गन्ध को त्यागते रहो। यह कार्य अपान का हो गया। इसी प्रकार व्यान कण्ठ में रहता है। हम जो भी कुछ आहार करते हैं तो व्यान वायु का कार्य है कि वह उनको ले जाकर के उदर में परणित कर देता है जिसे हम उदान कहते हैं। वह उदान-प्राण उसका रस बना देता है, परिपक्व बना देता है और वह सामान्य प्राण को अर्पित किया जाता है। मानव के शरीर में बहत्तर करोड़, बहत्तर लाख, दस हजार दो सौ दो (72, 72, 10, 202) नाड़ियाँ प्रभु ने रची हैं। प्रत्येक नस नाड़ी में वह रस अपनी गति करने लगता है। इस प्रकार हमारे यहाँ यह पाँचों प्राण माने गये हैं। उसके ऊपर पाँच उपप्राण हैं। नाग का कार्य है कि जब मानव को क्रोध आता, क्रोध की अति मात्रा आती है, तो यह नाग प्राण अमृत को निगल जाता है और विष को उगल देता है। मानो क्रोध द्वारा मानव की शक्ति नष्ट-भ्रष्ट होती रहती है। इसी प्रकार देवदत्त का कार्य है। परन्तु मैं इसका संक्षिप्त परिचय देने जा रहा हूँ।

इस प्रकार जब यह दस प्राण बन गये, अब प्राण में इतनी गति नहीं थी कि विभाजन और हो सकते थे। परन्तु यही दस प्रकार का विभाजन हो गया। विभाजन होने के पश्चात् वह जो मनीराम था, वह तो स्वभाव से कामना उत्पन्न करने वाला था। शरीर में कामना उत्पन्न करता रहा। उसके पश्चात् देखो **पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्म इन्द्रिय** बन गई। उनके भिन्न-भिन्न कार्य हो गये। मानो चक्षु को दृष्टि का कार्य, श्रोतों को शब्दों का, घ्राण को दुर्गन्ध-सुगन्ध का और प्रत्येक इन्द्रिय को अपना-अपना कार्य परणित कर दिया। जब उनको कार्य अर्पित कर दिया तो वह अपना कार्य करने लगे। कामना उत्पन्न होती रही और कामना उत्पन्न होने से उन **इन्द्रियों का बाहरी स्वरूप** बन गया। इन्द्रियों का जब बाहरी स्वरूप बन गया तो और भी कामना उत्पन्न हुई। उस कामना के उत्पन्न होने पर आगे चल करके **तृष्णा** बन गई। जब तृष्णा बन गई, अब तृष्णा ऐसी महान् कलंकिनी है कि मानव के समीप जब तृष्णा उत्पन्न हो जाती है तो यदि आज्ञा के अनुकूल मानव का कार्य हो जाता है मानव को तृष्णा के पश्चात्

अभिप्राय आता है और यदि आज्ञा के अनुकूल कार्य न होता तो उस समय क्रोध उत्पन्न हो जाता है।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! देखो यहाँ **मान और अपमान** भी उत्पन्न हो गये। जब मान और अपमान उत्पन्न हो गये। अब उससे काम की धाराएँ उत्पन्न हो गई! आगे चल करके उसी से मोह आ गया देखो एक नवीन परिवार बन गया। इसलिये आज हमें यह विचार-विनिमय करना है कि यह जो हमारा घृणित परिवार बन गया है इस घृणित परिवार से हमें पार होना है, इससे हमें दूर होना है। परन्तु इस घृणित परिवार से वही मानव पार हो सकता है जिसको न तो मान है, न अपमान है। यदि मान और अपमान दोनों होंगे तो मानव में मोह इत्यादि नाना प्रकार की वस्तुयें उत्पन्न हो जाती हैं।

मेरे प्यारे! ऋषिवर। आज हम क्या उच्चारण करने चले आये। महर्षि कपिल जी ने कहा है कि इसी प्रकार मानव को विचार विनिमय करना चाहिए। आज मानव को संयमी बनना है। इसीलिये कई वाक्यों से उच्चारण करते चले आये हैं कि मानव को संयमी बनना है। संयमी कैसे बनेंगे। सबसे प्रथम कामना को शान्त करना होगा, जो मानव मुक्ति अथवा परमानन्द को प्राप्त करना चाहता है, उस मानव की जो कामना है और कामना में जो विडम्बना है, कामना में जो मधुपन है इस सबको विचार-विनिमय करना होगा। विचार-विनिमय करके सबसे प्रथम कामनाओं को शान्त करना होगा। वह किसी भी प्रकार की कामना हो मानो वह हमारी लोक की कामना हो, परलोक की कामना हो। क्योंकि कामना होगी तो संस्कार उत्पन्न होंगे और संस्कार उत्पन्न होंगे तो आवागमन भी स्वाभाविक बन जाता है। तो इसलिए आज हमें विचार विनिमय करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हम इनके ऊपर विचार विनिमय करें कि यह क्या है। हमें मुक्ति के द्वार पर जाना है। मुक्ति हमें कैसे प्राप्त होगी क्योंकि यह तो मानव के शरीर में एक महान् परिवार बन गया है। कोई मानव जीवन मुक्त होना चाहता है, कोई मानव यह चाहता है कि मुझे परमानन्द प्राप्त हो जाये, जिसको परम मुक्ति कहते हैं वह भी चाहता है परन्तु यह सब कुछ

कैसे प्राप्त होंगे? कपिल जी ने कहा है कि हम सबसे प्रथम मान अपमान पर संयम करें।

मन संयम की युक्ति

इसको विचार लो। यदि मान आयेगा तो वह भी हमारी मृत्यु का कार्य करेगा और अपमान आयेगा वह भी हमें मृत्यु में ले जायेगा। तो यह दो अज्ञानता के द्वार हैं। मान और अपमान को त्याग करके शान्त मुद्रा में विराजमान हो जाना चाहिए। क्योंकि वह जो तृष्णा का केन्द्र है, मान अपमान का केन्द्र है वह मनीराम है। इस मन को हमें शोधन करना है। यह जो ज्ञान के आसन पर विराजमान है (अर्थात जीवात्मा) ज्ञान ही ज्ञान चाहता है। परन्तु यह जो प्रतिष्ठा पाये हुए है (अर्थात मनीराम) इस पर संयम करना है। इन पर संयम कैसे करोगे? यह जो मनीराम है और इससे जो दूसरी शक्ति है जो इससे प्रबल है, उसमें इस मनीराम को सुगठित कर दो। उसी में लय कर दो। वह किस प्रकार करोगे? जब मान अपमान नहीं रहेगा तो तृष्णा पर संयम हो जायेगा। जब तृष्णा नहीं होगी, तो जो वह ज्ञान और प्रयत्न दोनों में अन्तर्द्वन्द्व है उस पर संयम होना स्वाभाविक हों जायेगा। ज्ञान की जो धारा है वह मानो आवागमन के आंगन पर अर्थात मन को प्रवृत्तियों पर रमण कर देनी चाहिए।

मन से शक्तिशाली संसार में कौन है? मन से शक्तिशाली संसार में प्राण है और कोई वस्तु नहीं है। क्योंकि एक प्राण ही ऐसा है जो मन को अपने वशीभूत कर सकता है अन्यथा और कोई भी इसका ऐसा आश्रय नहीं है जहाँ यह मन शान्त हो जाये। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! प्राण के विज्ञान में, प्राण के विभाजन में इस मनीराम को सुगठित कर देना चाहिए। जब यह तृष्णा एकाग्र (अर्थात क्षीण या निर्मूल हो जाता है, इन्द्रियों के जो विषय हैं यह शान्त हो जाते हैं क्योंकि मन का इनसे विच्छेद हो जाता है, यह इन्द्रियाँ शून्य हो जाती हैं, काम से रहित हो जाती हैं। जब यह शून्य हो जाती हैं तो उस को समाधि कहते हैं। हमारे यहाँ देखो लघु मस्तिष्क में जब प्राण और मनीराम दोनों सुगठित होकर के चले जाते हैं अर्थात अपना-अपना

कार्य करते हैं तो उसके पश्चात् वहाँ इन्द्रिय शून्य हो जाती हैं और इन्द्रियों के शून्य होने पर जो नाग, देवदत्त, धनञ्जय आदि पाँच उपप्राण हैं यह सुगठित हो जाते हैं और इससे आगे जो पाँच मुख्य प्राण हैं वह भी सुगठित हो जाते हैं और वह जो ज्ञान और प्रयत्न दोनों धारा बन गईं थी उन दोनों को एक मिलाने के पश्चात् मानव को **मुक्ति** का द्वार प्राप्त हो जाता है उसी को हमारे यहाँ मुक्ति कहते हैं, ऐसा कपिल जी ने कुछ वर्णन किया है। ज्ञान और प्रयत्न दोनों के मध्य से जब अन्तर्द्वन्द्व समाप्त हो जाता है तो उस समय कारण से कार्य, कार्य और कारण बेटा! दोनों, एक ही रूप में परणित किये गये हैं। कारण से कार्य कदापि भिन्न नहीं होता।

अनुभव का विषय

मेरे प्यारे ऋषिवर! आओ आज हम अपने प्यारे प्रभु की चर्चा करते चले जायें। विचार विनिमय में यह आता है कि वह जो अन्तर्द्वन्द्व आया है, मानो दोनों को जो भिन्न भिन्न करने वाला है, वह कौन सी शक्ति है। गम्भीर जो व्यक्ति होते हैं, यौगिक जो पुरुष होते हैं उनके हृदय में एक इसी प्रश्न को ले करके आगे चल कर धारा प्रारम्भ हो जाती है। जब मानव का शरीर प्राप्त हुआ तो दो धाराएँ बनीं ज्ञान और प्रयत्न। ऐसी कौन सी शक्ति थी जो दोनों को एक से द्वितीय भाव उसमें जगा गया। वह कौन था ऐसा? अन्तर्द्वन्द्व वह क्यों आया? तो बेटा! आगे ऋषि ने कहा है कि इसके ऊपर मानव जब शान्त हो जाता है, विचार विनिमय में होता है, तो यह मानव वाणी से इसको वर्णन करने में असमर्थ हो जाता है तो यह जो अन्तर्द्वन्द्व आता है इस पर विचार-विनिमय होता रहता है। कोई मानव कहता है कि प्रकृति से आता है। मानो जब प्रकृति जीवात्मा के निचले भाग में स्वीकार करते हैं तो उससे अन्तर्द्वन्द्व कैसे आ सकता है और यदि हम ब्रह्म के अन्तर्द्वन्द्व स्वीकार करते हैं तो बेटा! वहाँ तो प्रकाश है। वहाँ अन्तर्द्वन्द्व का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। अन्त में यह एक ऐसा गहन विषय आ जाता है कि मानव को यह उच्चारण करना होता है

कि इसके ऊपर केवल मानो अनुभव कर सकता है यह मानव को वाणी का विषय नहीं रह जाता।

मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हम कहाँ चले गये। वाक्य उच्चारण करते करते बहुत दूर चले गये। वाक्य प्रारम्भ यह हो रहा था कि साधारण रूपों से हम अन्त में इस वाक्य को क्यों ले जायें क्योंकि यह वाक्य तो समाधिष्टों का है साधकों का है, विचारकों का है और उन विचारकों का जो स्वयँ अपने में अनुभव करते हैं, वह शब्दों का विषय नहीं, शब्दों से उसका उच्चारण भी नहीं किया जाता बेटा! कपिल जी ने जब यह विचारा कि मुझे तो संसार में दो ही वस्तुयें प्रतीत होती हैं ज्ञान और प्रयत्न और दोनों के रूपों से यह संसार चल रहा है। अब तृतीय वस्तु मुझे ब्रह्म कोई प्रतीत नहीं होता। ब्रह्म कोई वस्तु नहीं। जब कपिल जी ने यह विचारा तो कपिल जी के गुरुदेव आ गये। गुरुजी ने कहा कि अरे! कपिल जी शान्त मुद्रा में क्यों हैं? उन्होंने कहा कि प्रभु मेरी तो तार्किक गति बन गई है और मैंने यह निश्चय किया है कि संसार में प्रभु नहीं है यह तो केवल मानव के लिये एक उच्चारण करने के लिये है क्योंकि संसार में तो मुझे ज्ञान और प्रयत्न ही प्रतीत हो रहा है। जो वस्तु विभाजन होती है और जो कर्त्ता है, वही दो वस्तु मुझे प्रतीत हो रही हैं तृतीय वस्तु कोई नहीं।

मुनिवरो! उस समय ऋषि ने कहा कि अरे कपिल जी अब तुम तपस्या करो, क्योंकि तुम तर्क में तो चले गये। परन्तु तर्क करने के लिये तपस्या को आवश्यकता होती है। जो तुमने जाना है इसके ऊपर तपस्या करो, अनुसन्धान करो और तपस्वी बन करके मौन होकर के विचार विनिमय करोगे, तो तुम्हारे द्वार से यह अन्तर्द्वन्द्व भी समाप्त हो जायेगा। उसके पश्चात् उन्होंने तपस्या की और तपस्या करने के पश्चात् अन्त में कपिल जी ने नेतिः नेतिः कहा कि आगे वह अनुभव का विषय रह जाता है लेखनी का विषय नहीं।

ज्ञान-विज्ञान में ओत-प्रोत होने की प्रेरणा

मेरे प्यारे ऋषिवर! मैं महर्षि कपिल जी को कुछ चर्चायें प्रकट कर रहा था। आज मुझे इतना समय तो प्रदान नहीं किया जा रहा

था केवल सूक्ष्म समय था, मैंने सूक्ष्म इनका परिचय कराया है। आज हमें विचार-विनिमय करने का सौभाग्य मिला कि मानव के जीवन का विकास बाहरीय कैसे बनता है। यह सूक्ष्म सी मैंने चर्चायें प्रकट को है कि मानव जो बाहरीय जगत में आता है, इस मनीराम के कारण से आता है, यही इसको लाने वाला है, और यही बाहरी जगत से आन्तरिक जगत में ले जाता है। इसीलिये इसको जानना मानव का सदैव कर्तव्य है और इसी को कर्त्तव्यवाद में ले जा करके इसी से मानव को परमानन्द और परम शान्ति प्राप्त होती है। तो शान्ति किस काल में प्राप्त होती है? जब ज्ञान होता है और यज्ञ भी शुद्ध और पवित्र होता है। उस समय मानव को वास्तविक शान्ति प्राप्त होती है मानो ज्ञान का ही वस्त्र होता है, ज्ञान का ही भूषण होता है, ज्ञान का ही उसका मार्ग होता है और ज्ञान का ही उनका सर्वस्व शरीर होता है उस समय वह मानव परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का हमारा वाक्य क्या कहता चला जा रहा था कि हम प्रभु की महिमा का गुण गान गाते चले जायें। और मानव को यह भी विचार-विनिमय करना चाहिए कि यदि मानव ज्ञान के क्षेत्र में नहीं जाना चाहता विचार-विनिमय करने का सौभाग्य मानव को प्राप्त नहीं होता तो मानव यह न विचारे कि जो मैं कर्म करता हूँ वह मुझे नहीं भोगना होगा। क्योंकि मानव जो भी कर्म करेगा शुभ करो, अशुभ करो, दोनों को भोगना उसके लिये अनिवार्य है। इसीलिये मानव के लिये सूक्ष्म चर्चा को कि तुम विचार-विनिमय करो, अपने मानव शरीर को जानने का प्रयास करो। यह हमारा मानव शरीर है क्या? इसमें वास्तविकता है क्या? यह कैसे परमाणुओं से सुगठित होने वाला शरीर, कितना सुन्दर लेपन है, कितने सुन्दर चक्षु है, प्रत्येक इन्द्रिय प्रभु ने कितने ज्ञान और विज्ञान से रची है परन्तु इन्हें बाह्यीय और आन्तरिक रूप दोनों से जानना, यह मानव का कर्त्तव्यवाद कहलाता है।

मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मानव को यह विचार विनिमय नहीं करना चाहिए कि जो हम कर्म करते हैं यह हमें नहीं भोगना होगा।

यह भोगना अनिवार्य है क्योंकि जैसा भी तुम कर्म करोगे वैसा ही भोगना है। इसके ऊपर बेटा! मुझे एक वार्त्ता स्मरण आती चली जा रही है जो पूर्व काल में भी मैंने इस वार्त्ता को प्रकट कराया है आज भी स्मरण आती चली जा रही है।

कर्मों का भोग

एक समय बिना समय के वृष्टि हो गई। प्रजा में त्राहिमाम् त्राहिमाम् हो गई। ब्राह्मणजनों ने कहा कि हम किसको उपदेश दें, किसके द्वारा ज्ञान की वर्षा करें, क्योंकि यहाँ तो अनावृष्टि हो गई और वैश्यों ने कहा कि हमारी सर्वस्व सम्पत्ति समाप्त हो गई। क्षत्रियों ने कहा कि किसकी रक्षा करें और शूद्रों ने कहा कि हम किसकी सेवा करें यहाँ तो सर्वस्व समाप्त हो गया। प्रजा में त्राहिमाम् त्राहिमाम् हो गई, तो प्रजा का समूह बना। वह प्रजापति के द्वार पर जा पहुँचे और कहा कि महाराजा! हम आपके आसन को पवित्र करने नहीं आये हैं हम तो अपनी कुछ पुकार लेकर आये हैं कि हमारा सर्वस्व समाप्त हो गया है, विनाश को प्राप्त हो गये, हमारा जीवन किस प्रकार चलेगा। उन्होंने कहा कि कारण उच्चारण करो। तो उन्होंने कहा कि महाराज बिना समय के वृष्टि हो गई है हमारी सर्वस्व सम्पत्ति नष्ट हो गई है। प्रजापति ने कहा कि कहो यह वृष्टि कहाँ से हुई उन्होंने कहा कि यह वृष्टि तो मेघों से आई है। अब प्रजापति ने मेघ मण्डलों को निमन्त्रित किया और सभा में नियुक्त किया गया और कहा कि अरे मेष मण्डलों! तुम तो बड़े स्वच्छ और पवित्र हो क्योंकि जल का रूप हो सतोगुणी होता है, यह मानव को नाना कामनाओं को भी शान्त कर देता है, यह तुमने क्या किया कि अनावृष्टि करके प्रजा का विनाश कर दिया।

प्रजापति से मेघ मण्डलों ने कहा कि भगवन्! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। मेरे से जो महाराजा इन्द्र ने कहा था इन्द्र ने आज्ञा दी, मैंने वृष्टि कर दी। अब प्रजापति ने मेघों को तो शान्त कर दिया और निमन्त्रण देकर इन्द्र को सभा में नियुक्त किया गया और कहा कि

अरे इन्द्र! यह बिना समय के वृष्टि की इच्छा मेघ मण्डलों से क्यों प्रकट की। उन्होंने कहा कि भगवन्! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है, क्योंकि मुझ से तो मेरी पत्नि शचि ने कहा था। अब प्रजापति ने इन्द्र की पत्नि शचि को निमन्त्रण दिया और उनको सभा में लाया गया। सभा में प्रजापति ने जब यह प्रश्न किया कि हे शचि! तुम तो जगत माता हो और जगत में भ्रमण करने वाली हो, शान्त बना देने वाली हो, क्या कारण है जो तुमने पति को वृष्टि की इच्छा प्रकट की। उन्होंनें कहा इसमें भगवन्! मेरा कोई दोष नहीं है। मेरे से तो समुद्रों ने कहा था अब प्रजापति ने समुद्रों को निमन्त्रण दिया और सभा में नियुक्त किया गया और उस के पश्चात् प्रजापति ने कहा कि अरे समुद्रों! यह तुमने बिना समय के वृष्टि की इच्छा क्यों प्रकट की। उस समय समुद्रों ने कहा कि भगवन्! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है, मेरे से तो आदित्य ने कहा था।

मुनिवरो देखो! अब प्रजापति ने आदित्य को निमन्त्रण दिया और आदित्य से कहा कि यह तुमने बिना समय के वृष्टि की इच्छा क्यों प्रकट की है। उन्होंने कहा कि भगवन्! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। मेरे से तो पृथ्वी माता ने कहा था। अब प्रजापति ने पृथ्वी माता को निमन्त्रण दिया और सभा में लाया गया। प्रजापति ने कहा कि हे पृथ्वी! तुमने बिना समय के वृष्टि की इच्छा क्यों प्रकट की। तो पृथ्वी माता ने कहा हे भगवन्! मैं क्या करूँ? जब यह प्रजा मेरे ऊपर पाप कर्म करने लगती है और जब मैं पाप में सन जाती हूँ तो उस समय मेरी इच्छा होती है कि मैं जल में स्नान करूँ। तो भगवन्! मेरी जो वेदना है, मेरी जो पाप भरी पुकार है आदित्य तक जाती है आदित्य नाम सूर्य का है। सूर्य से भगवन्! तेज का उत्थान होता है। तेज समुद्रों में जाता है और उसी तेज में जल का उत्थान होता है और उसी से मेघ मण्डल बनते हैं।

मुनिवरो देखो! जलों का उत्थान समुद्रों से हुआ। उससे मेघ मण्डल बने। शचि नाम विद्युत का है और इन्द्र नाम वायु का है। इन

तीनों का जब संघर्ष होता है तो धीमी-धीमी वृष्टि होने लगती है। उसी वृष्टि के द्वारा जब कहीं प्रजा के पाप होते हैं वहाँ अति वृष्टि हो जाती है और कहीं अनावृष्टि हो जाती है। प्रायः यह होता है प्रजा के कर्मों के द्वारा। तो पृथ्वी माता ने कहा कि भगवन्! जब मेघ मण्डलों से वृष्टि होती है तो उसमें मैं स्नान कर लेती हूँ और प्रजा अपने किये हुए पाप पुण्य कर्मों का फल भोग लेती है।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हमें विचार-विनिमय यह करना है कि मानव ने यदि अपनी शान्ति के लिये प्रयत्न नहीं किया, मानव जो भी कर्म करता है उसे भोगना अनिवार्य है और भोगा ही जायेगा। आज हम वास्तव में अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए अपनी मानवीयता की प्रतिभा को जानते हुए इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। हमें आत्मिक शान्ति को विचारना है क्योंकि आत्मा में शान्ति होना बहुत अनिवार्य है। कल मेरे प्यारे! महानन्द जो अपनी कुछ वार्ता प्रकट करेंगे। इनका वाक्य भी बड़ा गम्भीर होता है। कटु तो होता है परन्तु सत्यता से सना होता है। तो आज का हमारा वाक्य कहता चला जा रहा है कि हम अपने जीवन को वास्तविक उन्नतशील बनायें, पवित्र बनायें जिससे हम आत्मोन्नति प्राप्त करके परम शान्ति को प्राप्त करते रहें।

प्रभु कण-कण में विद्यमान

आज के वाक्य का अभिप्राय यह है कि आज मानव मानव से शान्त होकर के पाप कर्म कर सकता है परन्तु परमात्मा जो सर्वव्यापक है उससे शान्त होकर के मानव कोई भी पाप कर्म नहीं कर सकता। हमें विचारना है कि हम सर्वस्व प्रभु को दृष्टिपात करें, कण-कण में जब हम प्रभु को दृष्टिपात करते हैं तो मानो मानव पाप कर्म नहीं करता मानव पाप उस काल में करता है जब परमात्मा को अपने से दूर कर देता है। और दूर क्यों कर देता है? केवल अज्ञानता के वश क्योंकि प्रभु को जानता नहीं। जो मानव प्रभु को जानता है वह पाप नहीं करता। पाप वही मानव किया करता है जो प्रभु से दूर हो जाता

है। जो प्रभु के कण-कण में, मनों में, चक्षुओं में, श्रोतों में प्रत्येक इन्द्रिय में प्रभु की प्रतिभा स्वीकार करता है जिसने जो वस्तु बनाई है वह उसमें रमण भी कर रहा है और जब मानव को यह निश्चय हो जाता है तो वहाँ मानव पाप नहीं करता। यह है आज का हमारा वाक्य।

आज के वाक्यों का अभिप्राय कि हे मानव! आज तुम अपने पापों से स्वयँ भयभीत हो। क्योंकि मानव को स्वयँ अपने ऊपर दया करनी होगी। मानव जब अपने ऊपर दयालु बन जायेगा उस समय उसे स्वयँ शान्ति होगी। दूसरों पर दयालु मत बनो, सबसे प्रथम अपने पर दयालु बनो। अपने पर दयालु कौन प्राणी बनता है और किस काल में बनता है? जब उसे अपने ऊपर पूर्ण आत्म विश्वास हो जाता है, आत्म संयमी हो जाता है। इन्द्रियों पर संयम हो जाता है। वह मानव अपने ऊपर स्वयँ दया करता है। जो परमात्मा को अपने शरीर में कण-कण में स्वीकार करता है और उसकी इस प्रकार की प्रतिभा बन जाती है तो जानो की वह मानव स्वयँ अपने ऊपर दयालु बन गया है और जब मानव स्वयँ दयालु बन जाता है तो शान्ति उसके हृदय में असमाहित होती है और वह उस आनन्द को अनुभव करने लगता है जहाँ उसे जाना है, जिसे पारलौकिक कहते हैं क्योंकि परलोक को जाना है, भौतिक लोक को त्यागना है।

कल मुझे समय मिलेगा तो कल मैं कुछ आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान की चर्चा प्रकट कर सकूँगा। कल मेरे प्यारे! महानन्द जी भी अपने कुछ वाक्य प्रकट कर सकेंगे। आज अब यह समय समाप्त होने जा रहा है। अब वेदों का पाठ होगा। शेष चर्चायें कल प्रकट करेंगे। **मानव को स्वयँ अपने ऊपर दया करनी होगी और यदि दया न करोगे तो मानव इसी आवागमन में रमण करते रहोगे, जीवन में शान्ति नहीं आ पायेगी।** इसीलिये आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा, उसके पश्चात् यह वाक्य समाप्त।

दिनांक : 5 मार्च 1969

स्थान : गुजराती प्रगति समाज
विद्या मन्दिर, हैदराबाद

॥ ओ३म् ॥

ऋषियों के उद्‌गार

1. प्रभु ने जगत रचा है यह एक प्रकार का सुन्दर भव्य भवन है। इसमें मानव भ्रमण करने के लिये आया है।
2. जो जगत मेरे प्यारे प्रभु ने रचा है यह सब एक प्रकार का सौंदर्य विचारार्थ जगत है।
3. मानव को यह विचारना है कि हम क्या कर रहे हैं।
4. आज किसी के प्रति द्वेष किया जाए, क्रोधित हुआ जाए, किसी के प्रति अनिष्ट व्यापार किया जाए, अनिष्ट कल्पना की जाए तो उस मानव को उस समय स्वार्थ में प्रतीत नहीं होता परन्तु ऐसे प्राणियों के सब पुण्य हनन हो जाते हैं।
5. द्वेष स्वयँ अपने लिये किया जाता है क्योंकि द्वेष की मात्रा उस मानव की स्मरण शक्ति तथा सुकृत का हनन कर देती है।
6. विचार करके कार्य करना चाहिए यह मानव का सदैव कर्त्तव्य कहलाया गया है।
7. एक मानव दूसरे के प्रति अनिष्ट विचार बना लेता है। वे अनिष्ट विचार दूसरे के प्रति कदापि नहीं बनते।
8. मानव की जो भावना होती है, उसका जो अन्तःकरण होता है उसको वह शनैः शनै निगलता रहता है।
9. आज हम नाना प्रकार की विद्याओं को पान करने वाले बनें और उन विद्याओं को पान करते हुए हम अपने जीवन की प्रसारण शक्ति को जानने वाले बनें।
10. आज हम त्यागी और तपस्वी तथा दृढ़ संकल्पवादी बनें।
11. विज्ञान मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है।
12. हम इस भव्य भवन में आये हैं। प्रभु की सृष्टि है, हमें यहाँ ऊँची-ऊँची कल्पना, ऊँचे-ऊँचे विचारों का लेना है। हमें यहाँ अनुसन्धान करना है। हमें दूसरों के प्रति घृणा नहीं करनी है। हमें दूसरों की त्रुटियों को दृष्टिपात नहीं करना है।
13. बिना विचारे भी मानव पाप का पात्र बन जाता है और अपने सुकृत को नष्ट कर देता है। इसलिये हमें विचारक बनना है, हमें शोधक बनना है। पवित्र बनना है।
14. सर्वत्र इस चेतना का मूल कारण ब्रह्म माना गया है।
15. मानव का इस संसार में आने का यदि कोई उद्देश्य है तो वह एक ही उद्देश्य है कि हमें ऊर्ध्व बनना है।

।। ओ३म् ।।

जन्मदिन की शुभकामनाएँ

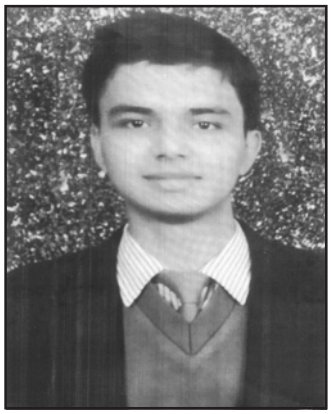

रक्षित भारद्वाज

श्रीमति इन्दु भारद्वाज व श्री विपिन भारद्वाज निवासी ग्राम रई, जिला मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश ने अपने प्रिय सुपुत्र रक्षित भारद्वाज के उन्नीसवें जन्मदिवस, दिनाँक 7 जून, 2017 के शुभ आगमन पर प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष भी 1100 रु. का सात्त्विक सहयोग समिति के प्रकाशन कार्य को प्रोत्साहित करने के लिए उदारता से प्रदान किया है जिसके लिए समिति हृदय से आभार व्यक्त करती है।

श्री भारद्वाज जी गुड़गाँव में सेवारत हैं और वहीं पर अपने परिवार सहित अपने जीवन को अपने कार्य के साथ-साथ वैदिक परम्परा से सम्पन्न करने में प्रयत्नशील हैं। समस्त परिवार पूज्यपाद गुरुदेव से विशेष प्रभावित है और उनके साहित्य का अध्ययन करते हुए यागों में अपनी आहुति प्रदान करके अपने जीवन को निरन्तर यज्ञमयी बनाने में सदैव अग्रणीय रहता है।

ऐसे श्रद्धालु एवम् याज्ञिक परिवार के सहयोग का समिति पुनः से आभार प्रकट करती है और उनके सौभाग्यशाली पुत्र के जन्मदिवस पर बारम्बार शुभकामनाएँ देते हुए समस्त परिवार के लिए सुख, शान्ति, दीर्घायु व सर्वतोन्मुखी समृद्धि के लिए परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करती है।

वैदिक अनुसन्धान समिति (पञ्जी.)

योगनिष्ठ पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज (शृङ्गी ऋषि जी) की अमृतवाणी संहिता के रूप में

*1.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 1)	80.00
*2.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 2)	80.00
3.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 3)	60.00
4.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 4)	60.00
5.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 5)	60.00
6.	Yogic Wisdom of Ancient Rishis	80.00
7.	वेद पारायण-यज्ञ का विधि विधान	25.00
8.	आत्म-लोक	35.00
9.	धर्म का मर्म	40.00
10.	शंका-निवारण	30.00
11.	यज्ञ-प्रसाद अर्थात् यज्ञ का महत्व	40.00
12.	आत्मा व योग-साधना	35.00
*13.	देवपूजा	50.00
14.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 1)	125.00
15.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 2)	125.00
16.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 3)	125.00
17.	रामायण के रहस्य	35.00
18.	यज्ञ एवं औषधि विज्ञान	40.00
19.	महाभारत के रहस्य	30.00
20.	अलङ्कार-व्याख्या	35.00
21.	रावण-इतिहास	50.00
22.	महाराजा-रघु का याग	30.00
23.	वनस्पति से दीर्घ-आयु	35.00
24.	मोक्ष प्राप्ति का मार्ग	35.00
25.	चित्त की वृत्तियों का निरोध	35.00
26.	आत्मा, प्राण और योग	35.00
27.	पञ्च-महायज्ञ	35.00
28.	अश्वमेघ-याग और चन्द्रसूक्त	40.00
29.	याग-मन्जूषा	40.00
30.	आत्म-दर्शन	30.00
31.	पुत्रेष्टि-याग और मातृ-दर्शन	30.00
32.	याग और तपस्या	60.00
33.	यागमयी-साधना	35.00
34.	यागमयी-सृष्टि	35.00
35.	याग-चयन	40.00
36.	दिव्य-रामकथा	120.00
37.	ज्ञान-कर्म-उपासना	35.00
38.	दिव्य-ज्ञान	40.00
*39.	महाभारत एक दिव्य दृष्टि	90.00
40.	महर्षि-विश्वामित्र का धनुर्याग	40.00
41.	आत्म-उत्थान	40.00
42.	तप का महत्व	40.00
43.	अध्यात्मवाद	40.00
44.	ब्रह्मविज्ञान	40.00
45.	वैदिक-प्रभा	35.00
46.	प्रकाश की ओर	35.00
47.	कर्तव्य में राष्ट्र	40.00
48.	वैदिक-विज्ञान	35.00
49.	धर्म से जीवन	35.00
50.	आत्मा का भोजन	40.00
51.	साधना	35.00
52.	त्रेताकालीन-विज्ञान	40.00
53.	यज्ञोमयी-विष्णु	40.00
54.	यौगिक प्रवचन माला भाग-6	80.00
55.	स्वर्ग का मार्ग	40.00
*56.	यौगिक प्रवचन माला भाग-7	80.00
57.	माता मदालसा	50.00
58.	यौगिक प्रवचन माला भाग-8	80.00
59.	यौगिक प्रवचन माला भाग-9	80.00
60.	यौगिक प्रवचन माला भाग-10	80.00
61.	याग एक सर्वाङ्ग पूजा	80.00
62.	यौगिक प्रवचन माला भाग-11	80.00
*63.	यौगिक प्रवचन माला भाग-12	80.00
64.	मानव कल्याण की चर्चाएं	50.00
65.	प्रभु-दर्शन	50.00
*66.	यौगिक प्रवचन माला भाग-13	80.00
67.	समाज उत्थान का मार्ग	50.00
*68.	यौगिक प्रवचन माला भाग-14	80.00
*69.	ब्रह्म की ओर	50.00
70.	ईश्वर मिलन	50.00
71.	यौगिक प्रवचन माला भाग-15	80.00
72.	यौगिक प्रवचन माला भाग-16	80.00
*73.	नैतिक शिक्षा	50.00

*सहजिल्द का मूल्य 20 रु. अतिरिक्त है।

पुस्तक प्राप्ति के स्थान

योगनिष्ठ पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज की अमृतवाणी का साहित्य सँहिता, कैसेट्स, सी. डी. व डी. वी. डी. के रूप में निम्न स्थानों पर उपलब्ध हैः–

1. श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय, लाक्षागृह, बरनावा, जिला–बागपत, (उ.प्र.)। मोबाइल नं 09719622950
2. श्री गुरुवचन शास्त्री, मकान नं. 165/30ए, दक्षिण भोपा रोड़, निकट माढ़ी की धर्मशाला, नई मण्डी, मुजफ्फरनगर (उ. प्र.)। मोबाइल नं. 09412888050
3. सुश्री. नीरू अबरोल, के-3 लाजपत नगर-3, नई दिल्ली। दूरभाष नं. 011-41721294
4. डॉ. मधुसूदनेश्वर प्रकाश, A-59 पंचशील एन्क्लेव नई दिल्ली-110017 दूरभाष नं. 011-41030481
5. श्री जितेन्द्र चौधरी, ए-84, मालवीय नगर, नई दिल्ली-110017, मो. नं. 9811707343
6. श्री अनिल त्यागी सुपुत्र श्री सुशील त्यागी सी-47 रामप्रस्थ, गाजियाबाद (उ.प्र.)। दूरभाष नं. 0120-4165802
7. श्री आशीष त्यागी, डी-293, रामप्रस्थ, पोस्ट ऑफिस चन्द्रनगर, गाजियाबाद पिन कोड-201011 (उ.प्र.)। दूरभाष नं. 0120-2642052
8. श्री लोमश त्यागी, 106/4 पंचशील कालोनी गढ़ रोड़, मेरठ, (उ.प्र.) मोबाइल नं. 09410452076
9. श्री विवेक त्यागी, 16ए, अशोक कॉलोनी, अल्कापुरी, हापुड़, (उ.प्र.)। दूरभाष नं. 0122-2316196
10. श्री संजीव त्यागी, 1107, सैक्टर-3, बल्लभगढ़, फरीदाबाद हरियाणा। मोबाइल नं. 09910589486
11. मैं. हर्ष मेडिकोज, ए-2/31, सैक्टर-110–मार्किट नोएडा, फेस-2, (उ.प्र.) मोबाइल नं. 9899228860, 9871367937
12. पवन त्यागी सुपुत्र श्री राजाराम त्यागी, मौ. खड़खड़ियान, माता, ग्राम खरखौदा, जिला मेरठ (उ.प्र.) मोबाइल नं. 7536097171
13. श्रीमती बाला, 251, दिल्ली गेट, नई दिल्ली। दूरभाष नं. 011-23282088
14. डॉ. अशोक कुमार आर्य, आर्यावर्त कालोनी निकट मुरादाबादी गेट, अमरोहा, जिला-जे.पी. नगर (उ.प्र.) मोबाइल नं. 09412139333
15. श्री सुमन कुमार शर्मा, जे-380, सैक्टर बीटा-2, ग्रेटर नोएडा, (उ.प्र.) मोबाइल नं. 09313530505
16. श्री सतीश भारद्वाज, ग्राम बहेडी, रोहाना मिल, जिला मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)।
17. मैं. विजय कुमार, गोविन्द राम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली। दूरभाष नं. 011-23977216

मासिक सहयोग

श्री हरीराम गुप्ता, केसर स्टील, वजीरपुर, दिल्ली	1000 रुपये
श्री चिंतामणि त्यागी एवं श्री जगमोहन त्यागी बरला, मुजफ्फरनगर	1000 रुपये
श्री संजीव त्यागी (दिनकरपुर) फरीदाबाद, हरियाणा	1000 रुपये
श्री अरुण त्यागी, राजनगर, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश	500 रुपये
श्री विनोद त्यागी सुपुत्र श्री जयप्रकाश त्यागी मकनपुर, गाजियाबाद	500 रुपये
मा. कार्तिक त्यागी सुपौत्र श्री रामनिवास त्यागी ग्राम भंगेल, नोएडा	251 रुपये
मा. लोमश त्यागी सुपौत्र श्री रामनिवास त्यागी ग्राम भंगेल, नोएडा	251 रुपये
डॉ. शुचि, डॉ. राजीव चावला, आणद, गुजरात	250 रुपये
श्री राकेश शर्मा, विराट नगर, पानीपत, हरियाणा	250 रुपये
श्री कृष्ण लाल बत्रा, इन्द्री, जिला करनाल	201 रुपये
मास्टर कवन्धि, रामप्रस्थ, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश	101 रुपये
मास्टर सिद्धार्थ, अँकुर अपार्टमैन्ट, दिल्ली	101 रुपये
मास्टर अभ्युदय त्यागी, न्यू जर्सी, अमेरिका	101 रुपये

विशेष सूचना

वैदिक अनुसन्धान समिति के सभी आजीवन सदस्यों को एतद् द्वारा सूचित किया जाता है कि समिति की **साधारण सभा की आगामी बैठक दिनाँक 17-9-2017** दिन रविवार को, **आर्य समाज मन्दिर, मालवीय नगर, दिल्ली-110017** में प्रातः 11.00 बजे आयोजित होगी जिसमें समय भाग लेने का कष्ट करें। सभा में विचारणीय विषय है–

1. पिछली आम सभा की कार्रवाई की पुष्टी।
2. पिछले वर्ष के आय-व्यय की समीक्षा और नए वर्ष के अनुमानित आय-व्यय पर विचार।
3. प्रकाशन सम्बन्धी सभी विषयों पर विचार-विमर्श।
4. समिति के संविधान व कार्य प्रणाली में आवश्यक संशोधन पर विचार-विमर्श व अन्य प्रश्न प्रधान जी की अनुमति से।

मन्त्री (वैदिक अनुसन्धान समिति)

योगमुद्रा में प्रवचन करते हुए पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज

उद्‌बोधन

आज कोई मानव संसार में मिथ्यावाद उच्चारण करके नाना प्रकार के द्रव्य को एकत्रित कर लेता है। अरे मानव! वह द्रव्य तेरे साथ नहीं जायेगा। तेरे साथ तो वही कर्म जायेगा जितना तुम अपने प्रभु से मिलान करते हो। आज तू अभिमान में विराजमान हो जाता है कि मैं इतना द्रव्यपति बन गया हूँ इतने गृह निर्माण किये हैं इनका मैं स्वामी हो गया हूँ परन्तु यह तेरे हृदय में अभिमान है। यह अभिमान तुझे स्वयं निगल जायेगा। यह गृह यहीं के यहीं रह जायेंगे। परन्तु एक समय वह आयेगा कि यह अभिमान ही तुझे निगल जायेगा। मुझे स्मरण है कि यहाँ महाराजा दुर्योधन ने क्या कहा था, महाराजा रावण ने क्या कहा था कि मैं विजयी बनूँगा। राम को आने नहीं दूँगा। रावण का चिन्ह भी नहीं रहा संसार में। कहाँ है रावण? कहाँ है वह स्वर्ण की लंका? वह इस पृथ्वी में रमण कर गयी। वह गृह दृष्टिपात् भी नहीं आते। परन्तु हम कल्पना कर लेते हैं, विचाराधारा बना लेते हैं कि रावण राजा था परन्तु उनका चिन्ह हमें प्राप्त नहीं होता।

पूज्यपाद-गुरुदेव

वर्ष 45 : अंक : 539
अगस्त 2017

मूल्यः
दस रुपये

POSTED AT N.D.PS.O ON 10/11-8-2017
Published on 5th day of the same month